'कौल-कल्पतरु' चण्डी

वर्ष ४७ : भाद्रपद २०४५ वि०–सितम्बर ८८ : सं० ६

'शक्ति-पीठ काशी'–विशेषांक

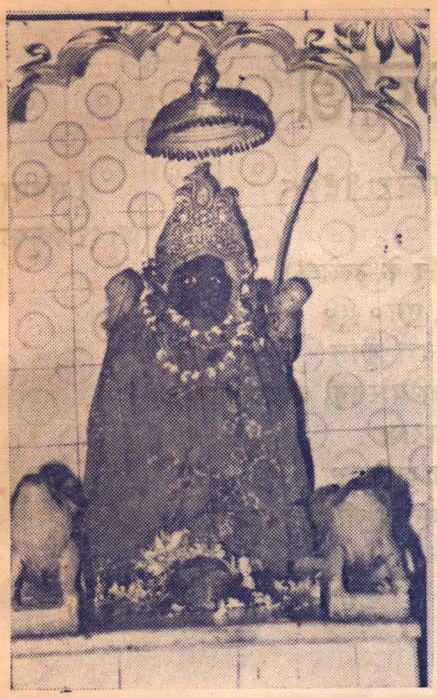

'काली-मठ' में
सिंह पर आसीन भ० काली

बलि-कुण्ड

'शक्ति-पीठ काशी' के
उच्च कोटि के साधक
'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित

सामान्य वार्षिक मूल्य : ४५-०० रु०

कौल-कल्पतरु चण्डी

वर्ष ४७] भाद्रपद २०४५ वि०—सितम्बर १९८८ [संख्या ६

१ सम्पादकीय (आवरण-पृष्ठ २)
२ शक्ति-पीठ काशी (तन्त्र-शास्त्र, पीठ-निर्णय और पुराणादि के उल्लेख) १
३ काशी का 'काली-मठ' : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० ३
४ काली-मठ के सिद्ध महा पुरुष : 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल ५
५ काली-मठ की गौरव-मयी परम्परा : श्री अशोककुमार श्रीवास्तव, आजमगढ़ ९
६ अति विस्तृत शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १०
७ महान् साधक श्रीनारायण दीक्षित : पं० गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ११
८ सर्व-जीव-हितकारी, महान् शाक्त-सम्प्रदाय : स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १३
९ स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज १४
१० शक्ति-उपासना : स्वामी ज्ञानानन्द जी १५
११ 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित १६
१२ पं० कन्हैयालाल दीक्षित के उद्‌बोधक निवन्ध २२
(१) शक्ति की उपासना २२
(२) शक्ति-साधना—एक सिद्ध प्रयोग २४

सम्पादकीय

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल की 'जन्म-शताब्दी' के उपलक्ष्य में अप्रैल, १९८७ से देश के प्रमुख नगरों में दो दिवसीय समारोह किए जा रहे हैं। पूज्य शुक्ल जी ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी और शाक्त-धर्म के उन्नयन के लिए जीवन भर भगीरथ प्रयास किए। आपके गौरवशाली कृतित्व के इन दोनों पक्षों को प्रस्तुत कर देश-वासियों को उद्‌बोधित करने के उद्देश्य से ये समारोह हो रहे हैं। इन समारोहों का विस्तृत सचित्र विवरण 'सम्पादक की वाणी' नामक मासिक लघु स्मारिका में प्रकाशित होता रहा है। आध्यात्मिक समारोहों का संक्षिप्त वर्णन 'चण्डी' में प्रायः उद्‌धृत हुआ है।

लगभग १९१७-१८ में दशाश्वमेध, वाराणसी की कान्यकुब्ज संस्कृत पाठशाला में निवास करते हुए 'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी ने दो वर्षों तक हिन्दू कालेज में विद्याध्ययन किया था। उन्हीं दिनों, लक्ष्मी-कुण्ड के प्रख्यात प्राचीन श्रीकाली-मठ में नित्य होनेवाले अर्चनों में भी उन्होंने बराबर भाग लिया था। यही नहीं, जिस 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने आधुनिक हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का स्वरूप देने के लिए सन् १९२१ से सन् १९४६ तक लगातार २५ वर्ष पर्यन्त अभूतपूर्व कार्य किए थे, उसका जन्म भी काशी की ही नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा हुआ था। ऐसी दशा में, काशी में शुक्ल जी की जन्म-शताब्दी न मनाई जाय, यह कैसे हो सकता था!

अचानक ही श्रद्धेय श्री गौरीशङ्कर जी चौधरी एवं प्रख्यात सिद्ध महात्मा 'श्री रमैय्या' जी के वंशज एवं श्री जगदम्बा के अनन्य भक्त गुरुवर श्री पं० शिवाशङ्कर जी त्रिपाठी का प्रोत्साहन मिला और विगत ८ सितम्बर गुरुवार को

(शेष आवरण-पृष्ठ ३ पर)

शक्ति-पीठ काशी

तन्त्रशास्त्र, पीठ-निर्णय और पुराणादि के उल्लेख

'कुब्जिका तन्त्र' में महा-पीठों की गणना में 'काशी' का प्रमुखता से उल्लेख है। यथा—

मायावती मधुपुरी 'काशी' गोरक्ष-कारिणी।

'गन्धर्व तन्त्र' में ५१ शक्ति-पीठों की तालिका में 'वाराणसी' का उल्लेख इस प्रकार है—

काम-रूपं महा-पीठं पीठं 'वाराणसी' तथा।

'वृहन्नील तन्त्र' में 'काशी' व 'वाराणसी' से सम्बन्धित दो पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं—

काम-रूपं प्रियं 'वाराणसी' नैपालमेव च।
कामेशी काम-रूपे त्वं पूर्णा 'काश्यां' विमुक्तिदा।

'प्राण-तोषिणी तन्त्र' में पीठों के वर्णन में काशी का उल्लेख है। यथा—

'काश्यां' चैव अन्नपूर्णा च द्राविडे च सरस्वती।

'रुद्र-यामल तन्त्र' के तारा-षोढा-न्यास में 'वाराणसी'-पीठ का न्यास भौंहों के मध्य में करने का निर्देश है। यथा—

'वाराणसीं' भ्रुवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचन-त्रये।

'तन्त्रसार' में 'वाराणसी'-पीठ का सम्बन्ध मुख-वृत्त से बताया गया है।

'महा-पीठ-निरूपणं' में भी दो प्रकार के वचन मिलते हैं—

(१) **'वाराणस्यां' विशालाक्षी देवता काल-भैरवः।**
तत्र मे पतितं लिङ्गं स्वयं सदा-शिवः।
मणिकर्णिकेति विख्याता कुण्डले मम श्रुतेः॥

(२) **'वाराणस्यां' विशालाक्षी देवता काल-भैरवः।**
मणिकर्णीति विख्याता कुण्डलं च मम श्रुतेः॥

पुराणों में शक्ति-पीठों की १०८ अधिष्ठातृ देवताओं के जो नाम मिलते हैं, उनमें 'वाराणसी' का स्पष्ट उल्लेख है। यथा--

'वाराणस्यां' विशालाक्षी नैमिषे लिङ्ग-धारिणी।

'समयाचार तन्त्र' में शक्ति-पीठ काशी की विशेषता बताते हुए घोषित किया है कि—

प्रयागे श्रीगिरौ 'काश्यां' कालाकालं न शोधयेत्।

अर्थात् काशी में अनुष्ठान करने के लिए समय (मुहूर्त) के शुभ-अशुभ होने का विचार करने की आवश्यकता नहीं है। 'शक्ति-पीठ' होने से यहाँ सर्वदा शुभ काल ही रहता है।

सन् १८०६ की एक हस्त-लिखित दुर्लभ प्राचीन पाण्डुलिपि में १८ प्रमुख शक्ति-पीठों का नामोल्लेख हुआ है। उसमें 'वाराणसी' का स्पष्ट उल्लेख है--

'वाराणस्यां' विशालाक्षी काश्मीरे तु सरस्वती।

वङ्ग-प्रदेश में लोक-प्रिय "मनसा मङ्गल" नामक एक प्राचीन लोक-गीत में 'काशी के शक्ति-पीठत्व' का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है—

सतीर माथार केश पड़िलेक यथा।
'काशी' नामे तीर्थ हैल पूजये देवता॥

आधुनिक प्रख्यात शोध-कर्त्ता डा० डी० सी० सरकार कृत 'दि शाक्त पीठाज' में शक्ति-पीठ 'काशी' और 'वाराणसी' के स्वरूप का विवरण निम्न प्रकार सङ्कलित है—

काशी : कुब्जिका, नील, प्राण (अन्नपूर्णा), अविमुक्त, सती के केश से सम्बन्धित।

वाराणसी : रुद्र, अष्टादश (विशालाक्षी), नील, नाम (विशालाक्षी), पीठ (मणिकर्णिका--कुण्डल, विशालाक्षी, काल), शिव (उप-पीठ--कुण्डल, विशालाक्षी; अन्नपूर्णा, काल-भैरव, विश्वेश्वर)।

'पीठ' और 'उप-पोठ' के निर्णय के अनुसार 'मणिकर्णिका' और 'वाराणसी' के सम्बन्ध में सती के गिरे हुए अङ्ग, उससे सम्बन्धित देवता और उनके भैरव का उल्लेख भी वहाँ मिलता है। यथा—

पीठ	अङ्ग-प्रत्यङ्ग	देवी	भैरव
१ मणिकर्णिका (वाराणसी)	**कुण्डल**	**विशालाक्षी**	**काल**
२ वाराणसी	**कुण्डल**	**विशालाक्षी**	**काल-भैरव**
		अन्नपूर्णा	**विश्वेश्वर**

उक्त प्रमाणों से स्पष्ट है कि 'काशी' अथवा 'वाराणसी' एक असाधारण 'शक्ति-पीठ' रहा है। यहाँ दो शक्तियों और उनके दो भैरवों की विलक्षण-उपस्थिति रही है। ऐसी दशा में यदि यहाँ प्राचीन काल से अनेकानेक सिद्ध शाक्त महा-पुरुषों की लोकोत्तर लीला देखने-सुनने को मिलती आ रही है, तो इसमें विस्मय की बात नहीं। 'चण्डी' मासिक पत्रिका के प्रस्तुत पृष्ठों में ऐसे ही विशिष्ट पुरुषों का संक्षिप्त विवरण देने का प्रयास किया गया है। आशा है, इस विवरण के द्वारा तीन लोक से न्यारी इस शक्ति-पीठ काशी की वास्तविक महिमा को हृदयङ्गम करने में लोगों को सुविधा होगी।

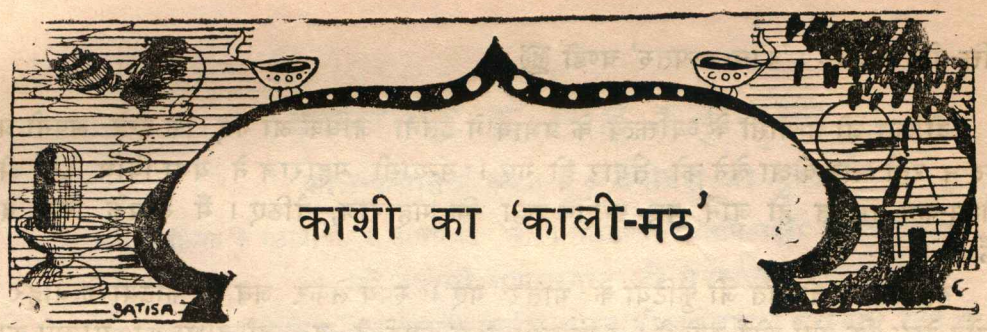

काशी का 'काली-मठ'

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

उत्तर प्रदेश की निराली नगरी काशी (वाराणसी) में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के अपने-अपने विशिष्ट स्थान हैं। शाक्तों के ऐसे स्थानों में वहाँ के 'काली-मठ' की विशेष प्रसिद्धि है। यह मठ दण्डी स्वामियों का है। कहा जाता है कि इसकी स्थापना कानपुर जनपद के पण्डित वाणीविलास दीक्षित ने की थी। वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और संन्यास लेने के लिए काशी पहुँचे थे, परन्तु यहाँ के दण्डी संन्यासियों ने कहा कि 'कान्यकुब्ज ब्राह्मण को संन्यास की दीक्षा नहीं दी जायगी क्योंकि वे आमिष-भोजी होते हैं।' इस पर दीक्षित जी ने उन संन्यासियों से कहा कि 'आमिष-भोजन शास्त्र-विहित है। मैं इसे प्रमाणों से सिद्ध कर दूँगा।'

यह कहकर दीक्षित जी दशाश्वमेध घाट पहुँचे और वहाँ एक बाँस में एक बड़ी मछली टाँग कर घोषणा की कि 'आमिष-भोजन के सम्बन्ध में जिनको सन्देह हो, वे यहाँ आकर शास्त्रार्थ कर लें।'

इस पर कुतूहल-वश वहाँ लोगों की भीड़ लग गई। अनेक संन्यासी भी पधारे। जन-समूह को देखकर दीक्षित जी ने उस मछली को सम्बोधन कर कहा कि 'हे मत्स्य-देव ! आमिष-भोजन के सम्बन्ध में शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा उपस्थित जनता का समाधान करने का कष्ट कीजिए।'

इस पर उस मछली ने धारा-प्रवाह संस्कृत में एक भाषण किया। उस भाषण में वेदादि के प्रमाण देकर उसने सिद्ध किया कि 'आमिष-भोजन' शास्त्र-विहित है। यह चमत्कार देखकर सभी लोग दीक्षित जी की प्रशंसा करने लगे। संन्यासियों ने भी आकर उनसे कहा कि 'तुम सिद्ध पुरुष हो। हम तुम्हें संन्यास की दीक्षा देने को तैयार हैं।'

इस पर दीक्षित जी ने कहा कि 'आप लोग शास्त्रार्थ में परास्त हो गए हैं। अब मैं आप लोगों से दीक्षा नहीं लूँगा। अब तो मैं काशीश्वर से ही दीक्षा लूँगा, अन्यथा नहीं।'

यह कहकर दीक्षित जी वहाँ से चले गए और 'लक्ष्मी-कुण्ड' जाकर वहाँ एक कुटी में रहने लगे। यहाँ उन्होंने अनशन करना इसलिए प्रारम्भ किया कि यदि 'विश्वेश्वर मुझे संन्यास की दीक्षा देंगे, तो ठीक है, नहीं तो निराहार रहकर प्राण त्याग दूँगा।'

कोई बीस दिन तक दीक्षित जी वहाँ पड़े रहे। २० वें दिन एक संन्यासी वहाँ आए। उन्होंने इनका नाम लेकर इन्हें पुकारा। ये चकित होकर कुटिया से बाहर निकले क्योंकि इनका नाम वहाँ किसी को ज्ञात नहीं था। एक संन्यासी को अपने सामने देखकर पूछा कि 'स्वामी जी, क्या आज्ञा है ?'

संन्यासी ने कहा कि 'तुम संन्यास लेने को कहते थे। आओ, तुम्हें संन्यास की दीक्षा दे दें।'

दीक्षित जी संन्यासी के व्यक्तित्व के प्रभाव में इतना अधिक आ गए कि इन्हें अपनी प्रतिज्ञा तक याद न रही और दीक्षा लेने को तैयार हो गए। संन्यासी महाराज ने यथा-विधि इन्हें दीक्षा दे दी। दीक्षा-कर्म समाप्त हो जाने पर इन्होंने कहा कि 'महाराज, बैठिए। मैं आपके लिए दक्षिणा ले आऊँ।'

यह कहकर दीक्षित जी कुटिया के भीतर गए। रुपये लेकर जब ये कुटिया के बाहर आए, तब इन्होंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। न संन्यासी है, न नाई है, न वहाँ दीक्षा की सामग्री का कोई चिह्न है। यह देखकर दीक्षित जी को बड़ा आश्चर्य हुआ और इन्हें अपनी प्रतिज्ञा की याद भी आई। दुःख से अभिभूत होकर दीक्षित जी वहीं मूर्छित होकर गिर गए। मूर्छावस्था में इन्होंने अनुभव किया कि स्वयं विश्वेश्वर इनसे कह रहे हैं कि 'तुम दुःखी क्यों होते हो? तुझे दीक्षा तो मैंने ही दी है। प्रतिज्ञा-भङ्ग होने का शोक क्यों करते हो? उठो और प्रसन्नता से अपना यजन-भजन करो।'

दीक्षित जी तत्काल उठकर बैठ गए और समझ गए कि उनकी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं हुई है, वरन् स्वयं विश्वेश्वर ने उसे पूर्ण किया है। 'काली-मठ' की नींव ऐसे ही सिद्ध महात्मा संन्यासी ने डाली थी। उनके उत्तराधिकारियों में प्रायः सभी सिद्ध महात्मा ही हुए हैं।

दुःख की बात है कि इस मठ का प्रामाणिक इतिहास प्राप्त नहीं है। महात्माओं के चरित भी दन्त-कथाओं के रूप में ही मिलते हैं। 'काली-मठ' के भूतपूर्व महन्त ब्रह्मीभूत स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती के समय में एक 'प्रशस्ति' लिखी गई थी, जिसका शीर्षक है—'श्रीमतां काशीस्थ-काली-मठ-मठाधीश्वराणां जीवन-चरितामृत-पाथोदधि-लहरी'।

उक्त प्रशस्ति 'काली-मठ' के अन्तिम महन्त ब्रह्मीभूत श्री स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती ने आज से ३५ वर्ष पूर्व संवत् २०१० में 'चण्डी' में प्रकाशनार्थ भेजने की कृपा की थी, जो उस वर्ष के उसके वैशाख अङ्क के पृष्ठ ५०-५४ में हिन्दी-व्याख्या सहित प्रकाशित हुई थी। उस प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि काशी के इस पावन 'काली-मठ' में कैसे-कैसे विलक्षण सिद्ध कौल महात्मा हो गये हैं।

प्रशस्ति का प्रारम्भिक मङ्गलाचरण-श्लोक निम्न प्रकार है—

स्फूर्जद्-दैत्य-कुलावतंस--दलने लोके गृहीत-व्रता,
नाना-शास्त्र-विभासिता बहु-ललज्जिह्वाञ्चलै राजिता।
भक्तानामभयङ्करी मति-मतां सद्-बुद्धि-दात्री सदा,
श्रीकाली कलि-कल्मषौघ तमसां चान्द्री प्रभा भासते॥

अर्थात् विश्व में राक्षसी चरितवाले उद्दण्ड अत्याचारियों का विनाश करने का जो व्रत लिये हैं, विविध प्रकार के शास्त्रों से जो विभूषिता हैं, लपलपाती हुई उज्ज्वल जिह्वा के सर्व-व्यापी प्रकाश से जो सुशोभिता हैं, भक्तों के लिये जो सदा अभय प्रदान करती हैं, बुद्धिमानों को जो सदैव सद्-बुद्धि देनेवाली हैं, वे भगवती श्री काली कलि-काल के पाप-समूह-रूपी अन्धकार में चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान प्रकाशमान हैं।

काली-मठ के सिद्ध महा-पुरुष

'कौल-कल्पतरु' स्व० पं० देवीदत्त जी शुक्ल

(काली-मठ के मठाधीशों से सम्बन्धित 'जीवन-चरितामृत-पायोदधि-लहरी' के आधार पर)

१. श्री स्वामी गणेशानन्द जी सरस्वती

बहुत पहले काशी के प्रसिद्ध 'काली-मठ' में श्रीस्वामी गणेशानन्द सरस्वती रहते थे, जो साक्षात् गणेश के ही स्वरूप थे। श्री भगवती काली उनकी इष्ट-देवता थीं। वे वाक्-सिद्ध महात्मा पुरुष थे। उनके समय में बादशाह औरङ्गजेब का शासन-काल भारत में चल रहा था। औरङ्गजेब मूर्ति-खण्डन के लिये प्रसिद्ध है ही। इस प्रसङ्ग में जब वह काशी गया, तो उसने श्री स्वामी गणेशानन्द जी की ख्याति सुनकर 'काली-मठ' में भी जाने का विचार किया।

'काली-मठ' में पहुँचने पर औरङ्गजेब ने स्वामी जी को देखा और उन्हें देखते हुये कटु स्वर में बोल उठा कि 'आप बहुत गन्दे कपड़े पहने तैल से सराबोर मठ में बैठे हैं। ऐसी पवित्र भूमि को मलिन कर रहे हैं! यहाँ से शीघ्र काशी छोड़कर निकल जाओ।'

इन विषैले शब्दों को सुनकर भी स्वामी जी कुछ न बोले, चुप-चाप बैठे रहे। इसी समय अचानक औरङ्गजेब की देह में दाह उत्पन्न हो गया। मारे जलन के बेचैन हो उठा। स्वामी जी के प्रभाव को अनुभव कर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। कुछ देर पड़े रहने के बाद उसके शरीर का दाह शान्त हुआ और वह स्वस्थ हुआ।

औरङ्गजेब ने हाथ जोड़कर स्वामी जी से कहा कि 'आपकी कृपा से मैं ठीक हो गया।'

इस पर स्वामी जी ने कहा कि 'अब तुम काशो छोड़कर निकल जाओ, और यदि ऐसा नहीं करोगे, तो तुम्हें भस्म कर डालूँगा।'

स्वामी जो की बात मानकर औरङ्गजेब काशी से चला गया। जाते समय उसने स्वामी जी का बड़ा सम्मान किया। इस सम्बन्ध में ताम्र-पत्र पर लिखा हुआ एक लेख भी 'काली-मठ' में विद्यमान था किन्तु अव्यवस्था होने से वह लुप्त हो गया।

२. श्री स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती

स्वामी गणेशानन्द जी के बाद 'कालो-मठ' के श्री स्वामी हरिहरानन्द जी सरस्वती की ख्याति फैली। वे बड़े ज्ञानी, विद्वान् और मनीषी थे। प्रथम महा-विद्या श्री काली की उपासना में वे निरन्तर संलग्न रहते थे। उनका स्वभाव परम शान्त था और वे सिद्ध महा-पुरुष थे।

एक बार काशी-नरेश की राज-गद्दी के अवसर पर काशी के सभी संन्यासी निमन्त्रित हुये। श्री स्वामी हरिहरानन्द जी भी गये। वहाँ काशो-नरेश ने यह प्रश्न उठाया कि 'उपस्थित संन्यासियों में सर्व-श्रेष्ठ कौन हैं, जिनकी मैं पूजा करूँ?'

इस पर सभी अपनी-अपनी सर्व-श्रेष्ठता प्रतिपादित करने लगे। तब श्री स्वामी हरिहरानन्द जी ने कहा कि 'ऐसे अपने को छोटा कौन कहेगा, सभी बड़े ही बनेंगे, परन्तु मेरा कहना यह है कि सब महात्मा अपने-अपने दण्ड गङ्गा जी की धारा में डाल दें और जिसका दण्ड भागीरथी अपने कर-कमलों से अर्पित करें, वही माननीय और पूजनीय हो।'

यह प्रस्ताव सबने स्वीकार किया और सभी संन्यासियों ने अपने-अपने दण्ड गङ्गाजी के प्रवाह में डाल दिये। सबके अन्त में स्वामी जी ने भी अपना दण्ड गङ्गा जी में डाल दिया। गङ्गा जी ने उनके दण्ड को ग्रहण कर अपने कर-कमलों से स्वामीजो को पुनः वापस कर दिया। यह देखकर सभी महात्माओं ने उनकी सर्व-श्रेष्ठता स्वीकार कर लीं और तब काशी-नरेश ने गुरु-भाव से उनकी पूजा की।

३. श्री स्वामी दामोदरानन्द जी सरस्वती

श्री स्वामो हरिहरानन्द जी सरस्वती के बाद 'काली-मठ' में श्री स्वामी दामोदरानन्द जी सरस्वतो हुये। वे भगवती कालीं के उद्भट उपासक थे। सिंह पर सवार होकर वे जहाँ-तहाँ घूमा करते थे। विशेष कर, गङ्गा जी के किनारे उनका निवास रहता था।

एक बार इसो प्रकार सिंहासीन स्वामीं जी गङ्गा जी के तट पर विचरण कर रहे थे कि वहाँ एक बङ्गाली महाशय आये। उनके पास वङ्ग-देश से लाई एक मूर्ति थी, जो श्रीकाली जी को थी। उन्होंने स्वामी जी को देखकर कहा कि 'मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो महात्मा इस मूर्ति को हँसा देगा, उसे मैं यह मूर्ति दे दूँगा और साथ में सवा लाख मुद्रा दक्षिणा में प्रदान करूँगा।'

स्वामी जी ने उसको प्रतिज्ञा सुनकर कहा कि 'मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा के अनुसार इस मूर्ति को हँसा दूँगा।

यह कहकर वे काली जी को स्तुति नव श्लोकों से करने लगे। महा-माया काली की वह मूर्ति स्तवन को सुनकर सहसा हँस उठी। यह देखकर बङ्गाली महाशय ने अपनो प्रतिज्ञानुसार वह मूर्ति उन्हें समर्पित कर दी और सवा लाख मुद्राएँ दक्षिणा में प्रदान कीं।

स्वामी जी ने मूर्ति को स्वीकार कर मूर्ति से कहा, 'माँ, चलो।' इस पर मूर्ति अपने पैरों से चलकर मठ में पहुँचो। स्वामी जो ने मूर्ति की स्थापना कर वहाँ की गुफा में उसे गुप्त कर दिया और ऊपर यन्त्र-स्तम्भन कर दिया। आज भी वह मूर्ति यन्त्र-सहित गुफा में विराजमान है, परन्तु महात्माओं के सिवा उसकी पूजा कोई नहीं कर सकता।

४. श्री स्वामी ठाकुरानन्द जी सरस्वती

श्री स्वामी दामोदरानन्द जी के बाद श्री स्वामी ठाकुरानन्द सरस्वती का पुण्य चरित उल्लेखनोय है। वे सर्व-शास्त्रों के अर्थ और तत्त्व-चिन्तन में दत्त-चित्त रहा करते थे और देवी की उपासना में निमग्न रहा करते थे।

एक बार माघ के महीने में मठ में उपस्थित जनता और शिष्य-गण ने स्वामी जी से निवेदन किया कि 'महाराज, त्रिवेणी-स्नान के लिए हम लोग प्रयाग जाना चाहते हैं।'

स्वामी ठाकुरानन्द जी अचानक संस्कृत में बोल उठे—'अये, मातः! आगच्छ त्वं।' अर्थात् 'हे मां गङ्गे, आओ, सुर-मुनि-वन्दित सु-विपुल प्रयाग-तीर्थ यहीं क्यों न हो जाय!'

परमानन्द से पुलकित-तन श्री स्वामी जी के इन वचनों के अनुसार 'काली-मठ' के तीन कूपों में त्रिविध तापों का नाश करनेवाली त्रिवेणी हरहराती हुई उपस्थित हो गईं। मठ और मठ का बगीचा पवित्र जल से भर गया।

यह चमत्कार देखकर सारी जनता आश्चर्य-चकित रह गई। फिर सब लोगों ने वहीं स्नान कर शिव-स्वरूप श्री स्वामी जी की पूजा की। 'काली-मठ' के उक्त तीनों कूप आज भी विद्यमान हैं और अथाह जल से परिपूर्ण हैं।

५. श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी सरस्वती

श्री स्वामी ठाकुरानन्द जी के बाद 'काली-मठ' में श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द सरस्वती हुए। वे श्री विश्वेश्वर की भक्ति में तन्मय रहा करते थे। उन दिनों श्री विश्वनाथ जी के ज्ञान-वापी में कूद जाने से विश्वनाथ का मन्दिर खाली पड़ा था। वहाँ के पण्डों को एक रात यह स्वप्न हुआ कि 'नर्मदा से तीन शिव-लिङ्ग ले आओ और अर्घ्य में रखकर काली-मठ के श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी सरस्वती को बुलाओ। वे जब अपने दण्ड से शिव-लिङ्गों को स्पर्श करेंगे, तब वे एक में सट जायँगे।'

पण्डों ने ऐसा ही किया और स्वामी जी के दण्ड-स्पर्श से तीनों लिङ्ग एक हो गए। इस प्रकार फिर पूर्व-वत् पूजन-पाठ विश्वनाथ जी का होने लगा।

इन्हीं श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने ईसानगर के राजा साहब को पुनः जीवित कर दिया था और वे ग्यारह वर्ष और जीवित रहे।

इसी प्रकार इनकी एक लीला यह प्रसिद्ध है कि एक दानव कामाख्या के नील पर्वत से एक कुचिला के वृक्ष पर चढ़कर नित्य रात्रि में आया-जाया करता था। 'काली-मठ' के बगीचे में वह कुचिले के वृक्ष को छोड़कर गङ्गा-स्नान करता था और विश्वनाथ, अन्नपूर्णा, काल-भैरव, दुर्गाजी आदि के दर्शन कर पुनः उसी वृक्ष पर चढ़कर कामाख्या नील पर्वत को वापस चला जाता था। यही उसका नित्य का क्रम था। एक दिन एक विद्यार्थी ने श्री स्वामी जी से कहा कि 'स्वामी जी, नित्य रात्रि में न मालूम क्या आँधी की तरह बगीचे में गिरा करता है।'

स्वामी जी ने कहा, 'अच्छा, आज बताना।'

उस दिन रात्रि के समय निश्चित समय पर शब्द होने पर उस विद्यार्थी ने स्वामी जी को सूचित किया कि 'महाराज, वह आ गया।'

स्वामी जी ने कमण्डलु से जल लेकर अभिमन्त्रित कर भूमि पर पटक दिया। वह वृक्ष वहीं बगीचे में लग गया। जब दानव दर्शन-पूजन करके आया, तब उससे वह वृक्ष नहीं उखड़ा। अन्त में परेशान होकर वह स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी के चरणों में जाकर गिरा और प्रार्थना की कि 'भगवन्, हम वापस कैसे जायँ?' इस पर स्वामी जी ने कहा कि 'वह वृक्ष तो जायगा नहीं। हाँ, बगीचे से कोई दूसरा वृक्ष ले जाओ, पर अब यहाँ न आइएगा।'

दानव ने वैसा ही किया। वह एक कैंत के वृक्ष को उखाड़ ले गया। उक्त कुचिले का वृक्ष स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती के समय तक काली-मठ' के बगीचे में विद्यमान रहा। बाद में स्वामी पूर्णानन्द जी ने उसे इसलिए कटा दिया क्योंकि पुलिस उस पेड़ के सम्बन्ध में मठ में प्रायः आया-जाया करती थी। जिस समय कुचिले का वह वृक्ष काटा गया, स्वामी अक्षोभ्यानन्द जी सरस्वती विद्यार्थी-रूप में 'काली-मठ' में विद्यार्थी-रूप में रहते हुये पढ़ते थे। उनके सामने ही वह वृक्ष कटा था।

अन्त में श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी को एक और माहात्म्य-वार्ता सुनाकर इस लेख को समाप्त करते हैं।

एक बार शृङ्गेरी-मठ के जगद्-गुरु श्री शङ्कराचार्य काशी में पधारे और काशी के स्वामियों का एक सम्मेलन आयोजित किया। उस अवसर पर सब स्वामियों को उन्होंने भोजनादि से सन्तुष्ट किया और अन्त में उन्होंने पूछा कि 'सब स्वामी-गण सन्तुष्ट हैं? काशी-स्थित सब मठों के स्वामी आए तो हैं?'

इस पर किसी ने उन्हें बताया कि 'और सब तो आए हैं, परन्तु काली-मठ के श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी नहीं आए हैं।'

शङ्कराचार्य जी ने पूछा कि 'वे क्यों नहीं आए ?'

उत्तर मिला कि 'मनस्वी हैं, उनके मन की कौन जाने !"

इस पर दूसरे दिन प्रातः-काल शङ्कराचार्य जी स्वयं काली-मठ पधारे। उन्हें देखकर श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी न तो आसन से उठे ही और न उनसे हरि-स्मरण, प्रणामादि ही किया। यह देखकर श्री शङ्कराचार्य जी बड़े क्षुब्ध हुए। तब स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने एक ताम्र-घट में गङ्गा-जल मँगाया और उसमें विधि-वत् गणेश जी का पूजन कर उस घट को नमस्कार किया। नमस्कार करते ही घट के टुकड़े-टुकड़े हो गए।

यह प्रभाव देखकर शङ्कराचार्य जी चकित हो गए और उन्होंने श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी को पूजनादि से सम्मानित किया।

उपर्युक्त विवरण से प्रकट है कि काशी के 'काली-मठ' में एक-से-एक सिद्ध महात्मा पुरुष हो गए हैं, जिनके पुण्य चरित से आज भी साधक पुलकित हो उठते हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि संवत् १९९९ के आश्विन की 'चण्डी' के सम्पादकीय में शुक्ल जी ने 'काली-मठ' से सम्बन्धित एक महत्त्व-पूर्ण टिप्पणी निम्न प्रकार से लिखी थी।

महन्त जी का परलोक-गमन

"पवित्र काशी-पुरी में शाक्तों के कई स्थान हैं, परन्तु लक्ष्मी-कुण्ड के पास जो 'काली-मठ' है, वह एक विशिष्ट स्थान है। इसकी विशिष्टता यह है कि यह दण्डी-स्वामियों का मठ है। यहाँ काली जी की जो सुन्दर मूर्ति है, वह सिंह पर आसीन है।

परिताप की बात है कि इस मठ के वर्तमान महन्त स्वामी वासुदेवानन्द सरस्वती का देह-त्याग हो गया।

इस मठ के महन्तों में यह विशेष बात बराबर रही है कि उन्होंने मठ को कभी 'मठ' नहीं बनने दिया। यहाँ तक त्याग-भावना उनमें रही है कि इस मठ पर काशी-नरेश की ओर से जो गाँव पूजा-अर्चा के लिए लगे थे, वे भी निकल जाने दिए और उनकी कभी परवा न की। आज भी इस मठ के अनेक शिष्य हैं, परन्तु मठ ने 'मठ' का रूप धारण नहीं किया। वही त्याग और विराग की ही बराबर धूम रही।

हमारा वर्तमान महन्त जी से निवेदन है कि देश-काल की ओर भी ध्यान देने की कृपा करें। अपने शिष्य-समुदाय को सङ्गठित कर वे उनकी सहायता से 'काली-मठ' को शाक्त-धर्म का एक गौरव-पूर्ण केन्द्र बना सकते हैं।"

शुक्ल जी की इस टिप्पणी पर कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ, जिसके समाधान के लिए अगले कार्तिक के अङ्क में उन्होंने दूसरी टिप्पणी लिखी—

संन्यासी और शाक्त-धर्म

"पिछले अङ्क में इसी स्तम्भ में काशी के 'काली-मठ' के महन्त जी के निधन का समाचार छपा था। उसे पढ़कर दो-एक सज्जनों ने यह कहकर कि क्या 'दण्डी स्वामी भी शाक्त-धर्म के अनुयायी होते हैं ?' आश्चर्य प्रकट किया। उन्हें जानना चाहिए कि श्री शङ्कराचार्य जब स्वयं परम शाक्त थे, तब इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? उनके सभी मठों में जगदम्बा की प्रतिमा स्थापित है और उनके गद्दी-धर सभी शङ्कराचार्य जगदम्बा की सविधि पूजा-पाठ किया करते हैं। तब 'काली-मठ' के महन्त जी के शाक्त-धर्मानुयायी होने में कौन-सी विचित्रता हुई ? इस मठ के मठाधीश कितनी ऊँची श्रेणी के साधक होते आए हैं, इसका ज्ञान यदि लोगों को होता, तो वे जानते कि संन्यास की भी सिद्धि इस मार्ग के द्वारा अनायास ही हो जाती है।

काली-मठ की गौरव-मयी परम्परा

श्री अशोककुमार श्रीवास्तव, आजमगढ़

देवाधिदेव भगवान् शिव की नगरी काशी, त्रिलोकी में निराली एवं अद्‌भुत, अनादि-काल से ही भगवान् शिव एवं उनकी शक्त्यम्बा की पुण्य लीला-स्थली रही है। इसी काशी के 'लक्ष्मी-कुण्ड' के तीर्थ-स्थल में स्थित 'काली-मठ' भगवती श्रीमद्-दक्षिण-कालिका के भक्तों का हृदय-स्थल एवं प्रेरणा-स्रोत सदियों से ही रहा है। पुराणों में वर्णित है कि समुद्र-मंथन के पश्चात् अमृत-कलश लेकर देवताओं और असुरों की छीना-झपटी और भागम-भाग के मार्ग में काशी का लक्ष्मी-कुण्ड-स्थान भी मार्ग में पड़ा और इसी से उस स्थान का नाम 'लक्ष्मी-कुण्ड' पड़ा। अनगिनत सिद्धों, साधकों, तपोनिष्ठ संन्यासियों की साधना-स्थली, यह दिव्य मठ, न जाने कितने भक्त परिवारों का आश्रय एवं उनमें प्राण-सञ्जीवनी सञ्चारित करने का कार्य करता आया है।

जन-श्रुति है कि माँ की प्रतिष्ठित मङ्गलमयी प्रतिमा स्वयं ही अपने चरण-कमलों से चलकर एक पागल से दिखनेवाले परमहंस संन्यासी के पीछे-पीछे आकर उसकी कुटी में स्थित हो गई और कालान्तर में मठ का निर्माण हुआ। मठ के प्राङ्गण में भगवान् लक्ष्मी-नारायण की स्वर्णिम अष्ट-धातु की दिव्य प्रतिमा एवं शुद्ध स्फटिक पर निर्मित 'श्री-यन्त्र' स्थापित है। इसका जीर्णोद्धार मन्दिर के वर्तमान पुजारी पं० श्री गङ्गाधर दुबे जी के अथक प्रयास से ३-४ वर्ष पूर्व सम्पन्न हुआ। मन्दिर के मुख्य कक्ष में भगवती महा-सरस्वती, महा-काली एवं महा-लक्ष्मी की प्रतिमायें प्रति-स्थापित हैं। यथा-स्थान भैरव, बटुक, गणेश तथा गुह्य कक्ष में भगवती श्यामा का दिव्य यन्त्र स्थापित है।

मठ विस्तृत 'भू-क्षेत्र' में चार तलों में बना हुआ था, जिसमें पचासों कमरे साधु-संन्यासियों, संस्कृत वाङ्मय के विद्वानों एवं अतिथियों के निवास हेतु प्रयोग में थे। काल के प्रभाव से अब उसमें से अधिकांश हिस्सा जीर्ण-शीर्ण होकर गिर रहा है। तथापि दोनों समय आरती, भोग, प्रसाद-वितरण विधि-पूर्वक होता है। वर्ष में एक बार सोलह दिनों तक चलनेवाला 'सोरहिया-नाथ' का मेला, विभिन्न तीज-त्योहारों पर झाँकियाँ एवं पूजन-अर्चन अभी भी इस स्थान की जीवन्तता को प्रकट करते हैं।

यह मठ कितना प्राचीन है, यह तो शोध का विषय है, तथापि लगभग आठ सौ वर्षों का प्रामाणिक इतिहास दृष्टि-गत है। पीढ़ी-पर-पीढ़ी सिद्धौघ गुरुओं की गौरव-मयी गाथा एवं उनके तपः-पुष्प की सुगन्ध से आकर्षित होकर असंख्य भक्तों की परम्परा इससे जुड़ती गई और लाभान्वित होती गई। आजमगढ़ जिले के 'माहुल' कस्बे में निवास करनेवाला हम लोगों का परिवार भी उसी शृङ्खला की एक कड़ी है। मेरे पर-दादा स्व-नाम-धन्य स्वर्गीय श्री रामफल दिव्य स्वामी पूर्णानन्द के शिष्य थे। गाँव में ही बस्ती से दूर भगवती काली का स्थान एवं पोखरा आदि उनके पूर्वजों का बन-वाया हुआ था। सोलह कहारों की पालकी में चलते थे और रात ८-९ बजे तक घर से चल कर माँ काली के स्थान पर आ जाते थे। वहीं नित्य अर्चन करते थे।

मैंने बचपन में अपने पिता से सुना है कि रात दो-तीन बजे जब वे वापस लौटते थे, तो कोठी के मुख्य फाटक पर ही पालकी से उतर जाते थे। तत्पश्चात् भवन के दरवाजे एक-एक करके अपने आप खुलते जाते थे और बिना किसी को जगाए वे अपने आसन तक अपने कक्ष में प्रविष्ट कर जाते थे एवं दरवाजे अपने आप पुनः बन्द हो जाते थे।

काल के विपरीत होने पर अज्ञात कारणों से उनके गुरुदेव उनसे रुष्ट हुए एवं उन्हें खड़ाऊँ से इतना मारा कि वहीं काशी में ही उनका देहान्त हो गया एवं परिवार पर बड़ी मुसीबत आ गई ! बीस वर्षों के लिये सारी ताल्लुकेदारी एव इलाका कोर्ट के अधीन हो गया। पर-दादी अपने दो बच्चों को लेकर अपने मायके मुजफ्फरपुर चली गईं, जहाँ बीस वर्षों तक उन लोगों का पालन-पोषण हुआ।

उपयुक्त समय आने पर मेरे बाबा स्व० बाबू नागेश्वरप्रसाद (उर्फ सुग्गनप्रसाद) तथा बाबू गुरुप्रसाद ने पुनः अपने इलाके में लौट कर जमींदारी के कार्य संभाल लिये। उन्होंने परमगुरु स्वामी मधुसूदनानन्द के आशीर्वाद से अपने कार्य-काल में अत्यन्त लोक-प्रियता, मान-सम्मान एवं यश अर्जित किया। उन्हीं के कृपा-प्रसाद से मेरे बाबा का वंश आगे चला और उनके ७ पुत्र एवं २ पुत्रियाँ हुईं। मेरे पिता स्व० बाबू बैजनाथप्रसाद स्वामी श्री वासुदेवानन्द के शिष्य एवं कृपा-पात्र थे। उन्हीं लोगों के कृपा-प्रसाद से हम लोग सानन्द जीवन-यापन कर रहे हैं। स्वयं मुझे इस मार्ग में प्रवृत्त करने, उन्हीं दिव्य गुरुओं की परम्परा में सिद्ध गुरु से दीक्षित करने एवं मेरा कष्ट-निवारण करने की कथा अनुभव गम्य ही है।

अनेकानेक परिवार इस स्थान के दिव्य गुरुओं की चरण-रज के चमत्कारी कृपा-प्रभाव की कथा कहते-सुनते अक्सर मिल जाते हैं। इस लेख को लिखने का मेरा ध्येय मात्र इतना ही है कि इस दिव्य स्थान के पुराने शिष्य एवं भक्त पाठक-गण यदि उपयुक्त समझें, तो अपने 'कुल-धर्म' की रक्षा एवं प्रतिष्ठा हेतु आगे आयें, जिससे इस स्थान की गौरव-मयी परम्परा पुनः स्थापित हो सके।

अति विस्तृत शाक्त-सम्प्रदाय

('चण्डी' वर्ष १ : सम्वत् १९९९-सन् १९४२ ई० : संख्या १ से उद्धृत)

"...आपका 'शाक्त-सम्मेलन' का पुरुषार्थ प्रशंसनीय है। 'शाक्त-सम्मेलन' नाम से यही सिद्ध होता है कि आप परमात्मा की शक्ति-रूप से उपासना करने का जो उपासक-सम्प्रदाय है, उसी सम्प्रदाय के अभ्युदय के लिये यह सम्मेलन कर रहे हैं।

परमात्मा की सान्निध्य-प्राप्ति को उपासना कहते हैं। उपासना 'योग'-मूलक है। इस कारण पहले 'योग का रहस्य' समझाने योग्य है। वेद के 'ज्ञान-काण्ड' के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा को एक करने के प्रयत्न को 'योग' कहते हैं। 'उपासना-काण्ड' के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध करके परमात्मा का साक्षात्कार करने को 'योग' कहते हैं और 'कर्म-काण्ड' के अनुसार उस सु-कौशल-पूर्ण कर्म को 'योग' कहते हैं, जिसके द्वारा वासना का नाश होकर सब कर्म करता हुआ साधक भगवान् का सान्निध्य प्राप्त कर सके।

अति विस्तृत 'शाक्त-सम्प्रदाय' में इन तीनों योगों का यथेष्ट सम्बन्ध रखा गया है।..."

—स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज
संस्थापक
'श्री भारत-धर्म-महा-मण्डल', काशी

महान् साधक श्रीनारायण दीक्षित

पण्डित गोविन्द शास्त्री दुगवेकर

श्री नारायण दीक्षित दक्षिणी ब्राह्मण थे और काशी में ही निवास करते थे। उनके प्रकट शाम्भव होने से यद्यपि पण्डित-गण उनसे द्वेष करते थे, तथापि उनके अगाध पाण्डित्य के आगे किसी की दाल नहीं गलती थी। शापादपि शरादपि' समर्थ होने से उनसे सभी काँपा करते थे। छत्रपति महाराज शिवाजी के वे प्रच्छन्न सहायक थे। वे ही उनका सारा खर्चा चलाते थे, जो हजारों रुपए मासिक का था।

ईसा की १७ वीं शताब्दी के मध्य भाग में उन्होंने काशी में ब्रह्मा घाट पर एक विशाल और किले की तरह सुदृढ़ भवन बनवाया था और उसी में शिष्य-वर्ग के साथ निवास करते थे। वह भवन इतना मजबूत और संगीन बना है कि अब तक उसमें मरम्मत की आवश्यकता नहीं हुई। इसमें भी बड़े-बड़े तहखाने बने हैं, जिनमें शस्त्रास्त्रों का संग्रह हुआ करता था। उस भवन के आस-पास कितनी ही नई सुदृढ़ हवेलियाँ बनीं और ढह गईं किन्तु वह ज्यों-का-त्यों सिर ऊँचा कर खड़ा है। नारायण दीक्षित का भवन होने से ही उसके आस-पास की बस्ती का नाम 'नारायण दीक्षित का मुहल्ला' पड़ गया है और एक विशेष घटना से वह भवन पवित्र तीर्थ या देव-स्थान के रूप में पूजा जाता है।

सम्भवतः सन् १६५०-५२ की घटना है। श्री नारायण दीक्षित के प्रकट शाम्भव होने से काशी के पण्डित उनके पीछे पड़े रहते और नाना प्रकार से उन्हें सताया करते थे। इसकी उनको कोई परवाह न होती और वे निरन्तर श्री जगदम्बा की उपासना में लगे रहते थे। छत्रपति श्री शिवा जी का सहारा होने से उनका दान-धर्म बढ़ा-चढ़ा था। तन्त्रोक्त यथा-विधि नित्य-नैमित्तिक कर्मों के करने में प्रति मास वे सहस्रावधि रुपये खर्च करते थे और उनके यहाँ प्रतिदिन सहस्र ब्राह्मणों का भोजन हुआ करता था।

एक बार कुछ ग्राम-कण्टकों ने उनके यहाँ काम करनेवाले रसोईदारों और रसोईदारनियों को यों कहकर बहकाया कि 'दीक्षित जी खुले आम अपने सैकड़ों शिष्य-शिष्याओं के साथ मांस-मदिरा का सेवन किया करते हैं। उनके घर यदि रसोई करने जाओगे, तो जाति से च्युत हो जाओगे और फिर तुम्हारे हाथ का छुआ अन्य कोई नहीं ग्रहण करेगा। कोई तुमको अपने घर घुसने न देगा, तुम्हारी रोजी मारी जायगी और तुम भूखे मरोगे।'

रसोईदार स्त्री-पुरुष दुष्टों के बहकावे में आ गए और सायंकाल की उपासना के समय एक दिन दीक्षित जी के निकट आकर बोले—'कल से हम आपके यहाँ आकर भोजन नहीं बनाएँगे, आप अपना प्रबन्ध कर लीजिए।'

दीक्षित जी ने दुर्जनों की चाल ताड़ ली और शान्ति के साथ उत्तर दिया—ठीक है, मैं क्या प्रबन्ध करूँगा, श्री जगदम्बा अपना प्रबन्ध आप कर लेंगी।

मन में सोचने लगे, 'क्या उपाय किया जाय ? सहस्र ब्राह्मणों को कल के लिए निमन्त्रण दिया जा चुका है, इन सबकी रसोई कौन बनाएगा ? बड़ी हँसी होगी।'

अगले दिन रसोई का काम पहले दिन की सन्ध्या से ही आरम्भ हो जाता था और प्रातः ३-४ बजे रात रहते ही दाल-भात के हण्डे चढ़ जाते थे। तरकारी काटने और रायता, चटनी तथा पकवान आदि बनाने का काम पूर्व-रात्रि में ही समाप्त कर लिया जाता था। इसी से दूसरे दिन दोपहर ठीक १२ बजे श्री जगदम्बा का भोग लगता और सुवासिनी तथा ब्राह्मण भोजन को बैठ जाते थे।

आज रसोईघर में और भण्डार-घर में कोई आदमी नहीं, यह देखकर दीक्षित जी बहुत दुखी हुए। उन्हें और तो कुछ सूझा नहीं, श्री जगदम्बा के यज्ञ-मण्डप में जाकर उन्होंने दश-पात्रासादन-विधि से अर्चन आरम्भ कर दिया। प्रातःकाल तक अर्चन और तदङ्ग-भूत होम चलता रहा। रात में रसोई का कुछ काम नहीं हुआ। होता कैसे ? काम करनेवालों ने तो हड़ताल कर दी थी। सबेरा हुआ, पहला पहर बीत चला था। घण्टे-दो घण्टे में भोजन करनेवाले निमन्त्रित ब्राह्मणों और सुवासिनियों का आना आरम्भ हो जायगा। कैसे काम बनेगा ?

दीक्षित जी की घबड़ाहट बहुत बढ़ गई। माँ के चरणों में सिर रखकर वे बच्चे की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। इतने में एक वृद्धा सुहागिन स्त्री हाथ में करछुल लेकर लाल साड़ी पहने उपस्थित हो गई और बोली—बेटा, जगदम्बा के उपासक होकर रोते क्या हो ! इनके चरणों के आश्रय में जो चला जाता है, उसके रोग, शोक, भय, चिन्ता आदि विकार कोसों दूर भाग जाते हैं। उठो और रसोई का काम देखो।

दीक्षित जी ने आँख उठाई, तो वृद्धा को देखकर चकित हो गए। बोले—माँ, तुम कौन हो ? कोई सहायक नहीं, मैं रसोई का क्या काम देखूँगा ? आज मेरी लज्जा कैसे बचेगी, इसी चिन्ता में रो रहा हूँ।

वृद्धा ने कहा—जो जगदम्बा के अनन्य भक्त होते हैं, उनका काम जगदम्बा सँभाल लेती हैं। कोई काम रुकता नहीं। विश्वास रखो और घबड़ाओ नहीं। मैं एक रसोईदारिन ही हूँ। रसोई पकाकर सबको खिलाना ही मेरा काम है। आज मेरे पास कोई काम नहीं है। सोचा कि आपके यहाँ बहुत काम रहता है। रसोई पकानेवाले अनेक लोगों की आपको सदा आवश्यकता होती है। मैं चली आई कि कदाचित् आपके यहाँ कोई काम मिल जाय।

दीक्षित जी ने कहा—एक-दो की नहीं, एक हजार लोगों की रसोई बनानी है और ३-४ घण्टे ही समय रह गया है। तुम अकेली समय पर कैसे रसोई तैयार कर सकोगी ?

वृद्धा बोली—इसकी चिन्ता तुम न करो। मैं अपनी सहेलियों को सहायता के लिए बुला लूंगी।

दीक्षित जी ने रसोईघर और भण्डार-घर उसे सौंप दिया। कई सुहागिनें जुट गईं। देखते-देखते रसोई तैयार हो गई। ठीक मध्याह्न में जगदम्बा को भोग लगा और सब सुवासिनियों तथा ब्राह्मणों को परोस दिया गया। उत्तम अन्न-सन्तर्पण से सब तृप्त और प्रसन्न हुए। दुर्जनों के मुँह फीके पड़ गए, उनके सारे उत्साह पर पानी फिर गया।

काशी के सुप्रसिद्ध अन्नपूर्णा-मन्दिर में रात्रि में शयन की आरती होने लगी, तो पुजारी और दर्शक भक्त-गण देखते हैं, मां की नथ गायब है। बड़ी हड़बड़ी मच गई कि अन्नपूर्णा जी की नथ चोरी हो गई। शासकों को सूचना दे दी गई। तदनुसार राजपुरुषों और सर्व-साधारण द्वारा नथ की खोज होने लगी। चोरी लगने के भय से पुजारी का हृदय काँप रहा था। उस समय जाति-बन्धन जैसे कठोर थे, वैसे ही चोरों-बदमाशों को भी बड़ा कड़ा दण्ड दिया जाता था। चोरों के हाथ काट दिए जाते थे। पुजारी को उस रात में नींद कहाँ !

उषा-काल में थोड़ी झपकी लगते ही वह क्या अनुभव करता है कि कोई वृद्धा उसके पास आकर कह रही है कि 'चिन्ता की बात नहीं, कल मैं नारायण दीक्षित के घर रसोई बनाने गई थी।

रसोई करते समय मैंने अपनी नथ उतार कर बड़े चूल्हे के ऊपर के आले में रख दी थी। लौटते समय उठा लाने को भूल गई। तुम जाकर मेरी नथ ले आओ।'

पुजारी हड़बड़ा कर उठा और उसने सबको अपना सपना कह सुनाया। सब आश्चर्य-चकित हुए और उनमें से कुछ प्रतिष्ठित लोग दल-बद्ध होकर दीक्षित जी के घर पहुँचे। देखा, तो जहाँ माँ ने बताया था, वहीं नथ रखी हुई थी। बड़ी धूमधाम के साथ पालकी में नथ की शोभा-यात्रा निकाली गई। दीक्षित जी भी साथ हो लिए। समारोह के साथ वेद-मन्त्र की ध्वनि होने लगी। महा-पूजा की गई और मां को नथ पहना दी गई।

दीक्षित जी के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। महिमा-मयी, करुणा-मयी, स्नेह-मयी मां का जय-घोष करते हुए वे नाचने लगे, लोटने लगे और भावावेश में आकर मूर्छित हो गए।

फिर लोगों ने उनको पालकी में बैठाकर जुलूस निकाला और घर पहुँचा दिया। लोगों ने भी दीक्षित जो को समझा और तब से उनसे छेड़-छाड़ करना छोड़ दिया। पुराने रसोईदार और नौकर भी क्षमा माँगने पर फिर नियुक्त कर लिए गए और दीक्षितजी का समाराधन-कार्य फिर पूर्व-वत् चलने लगा।

दीक्षित जी का वह ऐतिहासिक भवन इस समय एक नेपाली धार्मिक रानी साहबा के अधिकार में है। उस भवन में श्री अन्नपूर्णा जी पधारी थीं, इस कारण भक्त लोग भवन के एक कोने का गन्ध-पुष्प-जल आदि से पूजन किया करते थे। अब रानी साहबा ने वहाँ श्री अन्नपूर्णा जी की एक छोटी-सी मूर्ति भी स्थापित कर दी है। ('चण्डी', भाद्रपद, सं० २०१२ से संग्रहीत)

सर्व-जीव-हितकारी, महान् शाक्त-सम्प्रदाय

"...शाक्त-सम्प्रदाय की शक्ति-उपासना तीन श्रेणी की उपासना-प्रणाली से सम्बन्ध रखती है—१ निर्गुण ब्रह्म - उपासना, २ सगुण पञ्च-देवोपासना, ३ लीला-विग्रह-रूपी अवतार-उपासना।

निर्गुण ब्रह्म की धारणा, निर्गुण ब्रह्म का आत्म-ध्यान और उस सम्बन्ध से 'समाधि' की प्राप्ति करना अति कठिन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कहा है कि अव्यक्त की निष्ठा बड़ी ही कठिनता से प्राप्त होती है। इस कारण सगुण पञ्च-देवोपासना और उनकी लीला-विग्रह-उपासना उपासकों के लिये परम हितकारी है।

शाक्त-सम्प्रदाय का साधन-अधिकार अति विस्तृत होने से, उसकी साधन-प्रणाली अति दूर-दर्शिता पूर्ण होने से, शाक्त-सम्प्रदाय का अधिकार-मण्डल बहुत ही महान् और सर्व-जीव-हितकारी है।..."

—स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज
संस्थापक
'श्रीभारत-धर्म महा-मण्डल', काशी

स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज

['श्रीभारत-धर्म-महा-मण्डल' काशी के संस्थापक परमहंस श्री स्वामी जी महाराज वङ्गीय भरद्वाज-गोत्री कुलीन कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रीमधुसूदन मुखर्जी के यशस्वी सुपुत्र एवं शाक्त-धर्म के महान् मर्मज्ञ एवं सिद्ध महा-पुरुष थे। २८ जनवरी, १९५१ को वे ब्रह्म-लीन हुये। उनके सम्बन्ध में 'चण्डी', सं० २००६ के माघ (जनवरी, ४९) के ही अङ्क में उसके सूत्रधार पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल जी ने जो सम्पादकीय टिप्पणी लिखी थी, वह शब्दशः यहाँ उद्धृत है।—सं०]

काशी के 'भारत-धर्म-महा-मण्डल' के सञ्चालक स्वामी ज्ञानानन्द जी महाराज का वय, दिवङ्गत होने के समय, १०५ वर्ष का था। इस अवस्था में भी उनका स्वास्थ्य एक नव-युवक-जैसा ही सदा बना रहा। वे अपने जीवन के अन्त समय तक अपने कार्य में बराबर संलग्न रहे। उनके शरीर की शारीरिक शक्तियाँ, विशेष कर उनकी बौद्धिक शक्ति, पूर्ववत् ज्यों-की-त्यों काम करती रहीं। कुछ दिन हुए 'चण्डी' के लिए उन्होंने 'कौलोपनिषद्' का हिन्दी-भाष्य लिखवाया था। उसमें जो पाद-टिप्पणियाँ उन्होंने लिखवाई थीं, वे उनके बौद्धिक वैभव की परिचायक तो थीं ही, साथ ही ऐसी थीं कि बिना उनके उस उपनिषद् का आशय समझना सबके सामर्थ्य की बात नहीं हो सकती। वे ऐसे ही महिमा-मय पुरुष-पुङ्गव थे। जो उनका गुरु-प्रदत्त नाम था, उसको उन्होंने अपने विस्तृत जीवन में पूर्ण रूप से बार-बार सिद्ध कर दिखाया।

मथुरा के 'महा-मण्डल' के प्रथम अधिवेशन में सनातन-धर्म के प्रचार का जो भार उन्होंने ग्रहण किया था, उसको उन्होंने यावज्जीवन पूर्ण सफलता के साथ वहन किया। यद्यपि उनके साथियों ने उनका साथ ही नहीं छोड़ दिया था किन्तु वे सबके सब वर्षों तक उनके विरुद्ध समवेत खड़े रहे परन्तु उन्होंने इसको कुछ भी परवा नहीं की और सनातन वैदिक वर्णाश्रम-धर्म के प्रतिपादन में बराबर संलग्न रहे। जो व्रत ग्रहण किया था, उससे विरोधियों की बाढ़ को देखकर रत्ती भर विचलित न हुए। साथ ही विरोधियों के प्रहारों का वारण करने के लिए उन्होंने स्वप्न में भी उनके प्रति विरोध का भाव प्रकट नहीं किया। वास्तव में वे एक सच्चे संन्यासी थे—वीतराग संन्यासी थे।

'महा-मण्डल' के द्वारा सनातन वैदिक धर्म की जो अप्रतिम सेवा उन्होंने की है, उसका परिचय देने का यह स्थान नहीं है। इस सम्बन्ध में उन्होंने राष्ट्र-भाषा हिन्दी में जो प्रचुर प्रामाणिक साहित्य प्रस्तुत किया है, उसका भी उल्लेख करने का यह स्थान नहीं है। धर्म-प्रचार के लिए उन्होंने कितने साधु, उपदेशक तथा विद्वान् तैयार किए एवं कितने धनी-मानी एवं क्षमता-वान् साधारण गृहस्थों को धर्म की ओर प्रेरित किया, उनकी भी गिनती हम यहाँ करने को सक्षम नहीं हैं, परन्तु यहाँ हम यह अवश्य उल्लेख करेंगे कि उनके इस व्यापक कार्य-कलाप में वे स्वयं कहीं भी दिखाई नहीं देते थे। उनका कहीं भी किसी कार्य के सम्बन्ध में नामोल्लेख नहीं मिलेगा।

ऋषियों-जैसी ही उनकी त्याग-भावना थी। वे वास्तव में एक आदर्श संन्यासी थे। सब कुछ स्वयं करते थे परन्तु किसी को पता न लगने पाता था। 'भारत-धर्म-महा-मण्डल' के सारे कार्य वही किया करते थे। यहाँ यह दुःख के साथ कहना पड़ता है कि सनातन-धर्मियों में बहुतों ने उन्हें पहचाना तक नहीं, परन्तु इसकी उन्होंने कभी परवा नहीं की। वे अपने कर्तव्य-पालन से कभी विमुख नहीं हुए। जहाँ भी खबर पाते थे कि अमुक स्थान में अमुक व्यक्ति सनातन-धर्म की सेवा करने को अग्रसर होना

चाहता है, वहाँ बिना बुलाए ही वे पहुँच जाते थे। उनका अयाचित आशीर्वाद और प्रोत्साहन उस व्यक्ति को सदैव सुलभ रहता था।

इधर जब प्रयाग में 'शाक्त-सम्मेलन' की आयोजना हुई और 'चण्डी' पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ, तब स्वामी जी का वरद हस्त इन दोनों पर अपने आप ही आ पहुँचा। यही नहीं, उन्होंने 'चण्डी' के लिए प्रसाद-रूप में अपने लेख भी लिखवा कर भेजे और इस संस्था की उन्नति के लिए उनके प्रोत्साहनात्मक मङ्गल-मय वचन तो बराबर ही मिलते रहे। धर्म के प्रति इतना प्रगाढ़ अनुराग आज तक कहीं नहीं दिखाई दिया।

सनातन वैदिक वर्णाश्रम-धर्म की रक्षा के निमित्त जो व्यापक प्रयत्न उन्होंने जीवन भर किया है, उसकी जड़ इस पुण्य भूमि में अब बहुत गहरी ही नहीं पहुँच गई है किन्तु उसका अपना एक विशाल वृक्ष भी अस्तित्व में खड़ा हो गया है। वे नहीं रहे, यह सच है, परन्तु अपने को 'अमर' बना कर। वे ऋषि के समान यहाँ आए और एक ऋषि ही के समान यहाँ से विदा भी हो गए--ऐसे अमिट पद-चिह्न छोड़कर, जो इस देश के धर्म-प्राण हिन्दुओं को सदियों तक मार्ग-प्रदर्शन करते रहेंगे। दिवङ्गत महात्मा की जय हो !

शक्ति-उपासना

निराकार, निर्गुण, वाक् और मन से अतीत, सम्पूर्ण शक्तियों के आधार-रूप परमात्मा साधारण बुद्धि से अगम्य होने के कारण, उनके 'जगदाकर्षक तेज' के अवलम्बन से जो उपासना-प्रणाली प्रचलित है, उसको "सूर्योपासना" कहते हैं।

बुद्धि के अवलम्बन से जो परमात्मा की उपासना की जाय, वह उपासना "गाणपत्य उपासना" कहाती है।

परमात्मा की 'सत्-सत्ता' के अवलम्बन से जो उपासना-प्रणाली बनी है, उसको "शिवोपासना" कहते हैं।

परमात्मा की 'चित्-सत्ता' के अवलम्बन से जो उपासना की साधन-प्रणाली शास्त्रों में विहित है, उसको "विष्णु-उपासना" कहते हैं।

परमात्मा की 'महा-शक्ति' के अवलम्बन से जो उपासना-प्रणाली अति विस्तार से बनी है, उसको "शक्ति-उपासना" कहते हैं।

द्वैत-प्रपञ्च ब्रह्म-शक्ति का ही विस्तार है। अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड की सृष्टि-लीला में जहाँ देखिये, वहीं ब्रह्म-शक्ति-रूपिणी महा-शक्ति का ही रूप देखने में आता है।

उपासना के इस विस्तृत स्वरूप के अनुसार शक्ति-उपासना-प्रणाली में उपास्य मूर्तियों के भी अगणित भेद पाये जाते हैं।

त्रि-भाव के अनुसार त्रि-विद्या की उपासना-प्रणाली, त्रि-गुण के अनुसार त्रि-देवी की उपासना-प्रणाली, दश-विध अवतारों की शक्ति के विचार से दश महा-विद्या की उपासना-प्रणाली, महा-शक्ति की चतुर्विंशति विभूति के अनुसार २४ प्रकार की ध्यान-प्रणाली, नव-दुर्गा की उपासना, सप्त-मातृका की उपासना, चौंसठ योगिनियों की उपासना इत्यादि तथ्य 'शक्ति-उपासना-प्रणाली' के विस्तार और उसके महत्त्व के प्रतिपादक हैं।

स्वामी ज्ञानानन्द जी
संस्थापक
'श्री भारत-धर्म-महा-मण्डल', काशी

कुल-ज्योति पं० कहैयालाल दीक्षित

सिद्धेश्वरी, काशी के दीक्षित-वंश में आविर्भूत 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित एक उच्च कोटि के परोपकारी कौल साधक थे। उन्होंने 'गोपनीयता' के आवरण को छिन्न-भिन्न करने में 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल की मुक्त हस्त से सहायता की थी। उनके दिवङ्गत होने पर पूज्य शुक्ल जी ने मर्माहत होकर संवत् २००७ (मार्च, १९५०) की 'चण्डी' में निम्न सम्पादकीय टिप्पणी लिखकर प्रकाशित की थी—

काशी के 'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल ज्योतिषी अब इस संसार में नहीं रहे। वे उस परम धाम में पहुँच गए, जहाँ उनके जैसे उच्च कोटि के साधकों का पहले ही से स्थान निर्दिष्ट रहता है। उनका स्वास्थ्य अभी ऐसा नहीं था कि वे हम लोगों को छोड़कर चले जाते। पिछली गर्मियों में उन्होंने प्रयाग पधारकर हम लोगों को दर्शन दिया था। उस समय उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'अब हमारा यहाँ का प्रवास समाप्ति पर है', पर हमें उनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ।

पिछले आश्विन में वे संग्रहणी रोग से आक्रान्त हुए थे। उसके पहले ही उन्होंने हमारे आग्रह करने पर 'चण्डी' के लिये 'कोकिलार्णव तन्त्र' का सारा लेख अपने हाथ से लिखकर हम लोगों के पास भेज दिया था, जो उनके दिवङ्गत होने के समय तक 'चण्डी' में क्रमशः छपता रहा। उधर वे परम धाम को पधारे, इधर उनका लेख भी समाप्त हो गया।

'चण्डी' की सेवा उन्होंने जिस दिन से करनी ग्रहण की थी, अबाध रूप से अपने जीवनान्त तक बराबर करते रहे। हमें यह अच्छी तरह ज्ञात है कि उनके कतिपय आत्मीय जनों ने उन्हें बार-बार निषेध किया था कि वे 'चण्डी' में कुल-मार्ग के सम्बन्ध में लेख न लिखा करें, परन्तु उन्होंने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया, वरन् और भी उत्साह के साथ वे 'चण्डी' में बराबर लिखते ही रहे।

वे कुल-मार्ग के ज्ञान के धनी थे और उन्होंने अपने उस अक्षय धन को दोनों हाथों से भक्तों में बराबर वितरित ही किया। जो व्यक्ति उनसे परिचित थे, वे जानते हैं कि ज्योतिषी जी कितने कुल-धर्माभिमानी थे। साथ ही वे उसके प्रचार तथा प्रसार के लिए कितने अधिक क्रिया-शील थे। उनके इस असामयिक देहावसान से 'चण्डी'-परिवार की अपरिमित हानि हुई है। 'चण्डी' का एक श्रेष्ठ सहायक तो उठ ही गया है किन्तु उनके न रहने से कुल-धर्म की भी अपार हानि हुई है।

वे वास्तव में कौल धर्म की एक दिव्य ज्योति थे, जिसके प्रकाश में न मालूम कितने कौलों को स्व-धर्म का ज्ञान प्राप्त होता रहा है। हम यहाँ जगदम्बा से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें चिर शान्ति प्रदान करें तथा उनके परिवार को तादृश धैर्य।

उक्त टिप्पणी के अतिरिक्त पूज्य शुक्ल जी ने 'चाँद' और 'कर्मयोगी' के प्रख्यात सम्पादक श्री रामरख सहगल से अनुरोध कर ज्योतिषी जी की जीवनी भी लिखवाई, जो 'चण्डी' के अगले (अप्रैल, ५०) अङ्क में प्रकाशित हुई। श्री सहगल जी जीवन भर नास्तिक रहे, सङ्कट-ग्रस्त होने पर वे शुक्ल जी की सलाह पर ज्योतिषी जी की शरण में गए और उनकी कृपा से सङ्कट-मुक्त तो हुए ही, परम आस्तिक भी बन गए। उन्होंने बड़े विस्तार से उक्त जीवनी लिखी है, जिससे पता चलता है कि ज्योतिषी जी कितने निःस्पृह परोपकारी सिद्ध पुरुष थे। यहाँ संक्षेप में उनकी उस जीवनी के कुछ अंश उद्धृत करना उचित होगा—

काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान्, ऋग्वेद-कर्म-काण्डी, मन्त्र-शास्त्र के अद्भुत मर्मज्ञ, ज्योतिषाचार्य कन्हैया जी फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी २००७ तदनुसार ३ मार्च, १९५० को प्रातः ८ बजे शिव-लोक पधार गये। आपके चमत्कार-पूर्ण जीवन का संक्षेप इस बात से समझा जा सकता है कि केवल १२ वर्ष की अवस्था में आप वेदादि दस ग्रन्थ समाप्त कर चुके थे। आपका असली नाम विश्वनाथ जी था। 'विश्वनाथ' से 'कन्हैया' कैसे हो गये, यह बतलाने के लिये आपका पारिवारिक परिचय देना होगा।

आपका जन्म गुजराती परिवार में संवत् १९४७ के शुक्ल पक्ष की षष्ठी शनिवार को भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-भूमि मथुरा में हुआ था। आपके पूज्य पिता का शुभ नाम श्रीनाथ जी, व्याकरण-केशरी और पूजनीया माता का गुलाब कुँवर था। काशी के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी दाऊ जी महाराज आपके बड़े भाई थे।

जब आप एक वर्ष के थे, तभी आपकी माता चल बसीं। पिता जी का वियोग आपको उस समय हुआ, जब आप १४ वर्ष के थे। बम्बई के सुप्रसिद्ध ज्योतिषी सुन्दर देवी की माता आपकी नानी थीं, जिन्होंने इन दोनों भाइयों का लालन-पालन किया। उनकी आकस्मिक मृत्यु के कारण विश्वनाथ जी को अपने चाचा, काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी रतन जी के पास ११ वर्ष की आयु में ही आना पड़ा। रतन जी के कोई सन्तान नहीं थी, अतएव आपने इन दोनों भाइयों रघुनाथ जी तथा विश्वनाथ जी को दैव का वरदान समझकर पुत्र-वत् पाला-पोसा। ननिहाल का सम्बन्ध वैष्णव दीक्षा से था, अतः दीक्षोपरान्त इनके नामकरण भी किये गये। रघुनाथ जी दाऊ जी दीक्षित के शुभ नाम से और विश्वनाथ जी कन्हैया जी दीक्षित के नाम से प्रसिद्ध हुये।

इस प्रकार कन्हैया जी की वैष्णव दीक्षा ननिहाल में हुई थी। काव्य, न्याय और व्याकरण की शिक्षा आपको पिता श्रीनाथ जी से प्राप्त हुई, काशी के प्रसिद्ध विद्वान् और ज्योतिषी काशीनाथ जी के चरणों में बैठकर आपने मन्त्र-शास्त्र का अध्ययन किया और शाक्त-धर्म के प्रसिद्ध साधक गुरु-प्रवर स्वामी सुखानन्दनाथ जी महाराज द्वारा आपको भगवती श्री श्रीविद्या का पूर्णाभिषेक प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त था।

आपका रुझान फलित ज्योतिष की ओर भी रहा। फलित ज्योतिष-सम्बन्धी आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रत्नाभरण' नाम से प्रकाशित हुआ। आपने जैमिनी सूत्र पर हिन्दी में टीका की। सुन्दरोदय तथा अङ्क-ज्योतिष पर कुछ ग्रन्थ आप लिखकर छोड़ गये थे, जो अभी तक अप्रकाशित हैं।

काशी के चुने हुये जिन लगभग एक दर्जन सौभाग्य-शाली पण्डितों को श्री विश्वनाथ जी की विशेष सेवाएँ तथा आरती आदि करने का सौभाग्य प्राप्त था, उनमें कन्हैया जी का विशेष स्थान था। काशी की विद्वन्मण्डली में आपका शुभ नाम बड़े आदर से लिया जाता रहा। काशी जिन विद्वान् पण्डितों के लिये प्रसिद्ध है, उन प्रमुख विद्वान् व्यक्तियों में आपका एक प्रमुख स्थान था। करपात्री जी महाराज ने दिल्ली में एक महा-यज्ञ की आयोजना की थी, जिसमें समस्त भारत के १३०० प्रमुख विद्वानों ने भाग लिया था। सामवेद-विभाग के आचार्य आप ही चुने गए थे।

मई, १९५० के अङ्क में पूज्य शुक्ल जी ने 'कन्हैया जी का कौलत्व' शीर्षक लेख 'पण्डित गणपति शर्मा' के कल्पित नाम से लिखा, जो यहाँ शब्दशः उद्धृत किया जाता है—

काशी जी के पं० कन्हैयालाल जी ज्योतिषी गुजराती नागर ब्राह्मण थे और यह एक विदित बात है कि काशी के नागर सदैव से वेद-विद्या के धनी रहे हैं। कन्हैया जी ऋग्वेद के पूर्ण पण्डित थे। इसके अतिरिक्त वे ज्योतिष के भी काशी के नामी विद्वानों में गिने जाते थे, परन्तु वे कितने बड़े पण्डित थे, इसकी नाप-जोख मैंने कभी नहीं की। मैंने तो उनके सदैव तान्त्रिक साधक के रूप का ही दर्शन किया है और इसी दृष्टि-कोण से मैं उनके समीप उपस्थित होता रहा हूँ। उनका यह रूप अपने ढङ्ग का निराला था।

मन्त्र-शास्त्र का अध्ययन उन्होंने गुरु-मुख से किया था। साधना का अभ्यास भी उनका बढ़ा-चढ़ा था। यही नहीं, इस सम्बन्ध में वे सदैव अपनी बुद्धि का भी उपयोग करते रहे हैं, निरा पद्धतियों का ही अक्षर-अक्षर अनुधावन उन्होंने कभी नहीं किया।

कन्हैया जी एक आडम्बर-शून्य सीधे-सादे गृहस्थ ब्राह्मण मात्र थे। जो भी उनके समीप जाता था, पहले दर्शन से यह कदापि कोई अनुमान नहीं कर सकता था कि उनकी भोली-भाली चेष्टा के भीतर एक तेजस्वी ब्राह्मण की निर्मल आत्मा प्रति-क्षण दमकती रहती है। प्रसङ्ग उठते ही उनका वह तेजस्वी रूप खिल उठता था। वे तुरन्त महत्त्व-पूर्ण विषय पर इस प्रकार सरस प्रवचन करने लगते थे, मानो उनका तद्-विषयक ज्ञान पूर्ण अनुभव पर आश्रित हो। मुझे उनके ऐसे प्रवचनों के सुनने का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ और उनके उन प्रवचनों से कम-से-कम मुझे तो कौल-तत्त्व के रहस्य का बोध यत्-किञ्चित् अवश्य हुआ है।

कन्हैया जी कौल-तत्त्व के रहस्यज्ञ थे, जिसका ज्ञान उन्होंने ग्रन्थाध्ययन की अपेक्षा सत्सङ्ग से कहीं अधिक प्राप्त किया था। काशी के प्रायः सभी कौलों का सत्सङ्ग उन्होंने खूब किया था। उनके अतिरिक्त बाहर के भी जो कौल साधक काशी पधारते थे, उनके पास स्वयं जाकर वे जिज्ञासु-भाव से ही मिला करते। ऐसा करने में वे अपनी हेठी नहीं समझते थे। इस प्रकार वे बहु-संख्यक कौलाचार्यों के सम्पर्क में आए थे और बराबर आते रहते थे।

कन्हैया जी जहाँ साधक थे, वहाँ शाक्त-धर्म के प्रचार की भावना भी उनमें सदैव बराबर बनी रही। यही नहीं, उन्होंने कौलार्चन के प्रसार की एक योजना तक बना डाली थी। अपने इस सत्कार्य में उन्होंने शारदा-पीठ के शङ्कराचार्य त्रिविक्रम तीर्थ का सहयोग तक प्राप्त कर लिया था। दुर्भाग्य से शङ्कराचार्य जी महाराज शीघ्र ही दिवङ्गत हो गए और अकेले रह जाने के कारण वे अपनी योजना को कार्य-रूप नहीं दे सके।

कन्हैया जी की योजना में मुख्य बात यह थी कि कौलार्चन में मूल तत्त्वों के स्थान में अनुकल्पों को महत्त्व देकर अर्चन-क्रम सबको बताया जाए, जिससे लोग अच्छे साधक बनकर इह-लोक और पर-लोक में सफल-मनोरथ हों। शङ्कराचार्य महाराज उनके इस प्रस्ताव से प्रसन्न और सहमत ही नहीं हुए, किन्तु प्रकट रूप से इसके प्रचार का नेतृत्व ग्रहण करने का उत्साह के साथ वचन भी दिया था।

कन्हैया जी कहा करते थे कि 'वर्तमान समय में कौल धर्म का प्रचार होने से हिन्दू-समाज सु-सङ्गठित हो सकता है। उसके द्वारा एक नई शक्ति आविर्भूत हो सकती है।' परन्तु उनकी यह साध पूरी न हो सकी। फिर भी वे स्वयं शाक्त-धर्म के प्रचार का कार्य बराबर करते रहे। उनके कतिपय मित्रों ने उन्हें इस पुनीत कार्य से विरत करना चाहा, पर वे अपने निश्चय पर बराबर दृढ़ रहे। वे ऐसे ही कर्तव्य-परायण निष्ठा-वान् साधक थे।

काशी के नागर ब्राह्मणों में मुन्शी माधोलाल की गिनती वहाँ के रईसों में थी। अँगरेज सरकार ने उन्हें 'राजा' की उपाधि देकर उनका सम्मान किया था। सन् १९०५ में कांग्रेस का जो अधिवेशन काशी जी में हुआ, उसकी स्वागत-समिति के राजा साहब सभापति भी बनाए गए थे। जहाँ यह सब था, वहाँ वे उच्च कोटि के कौल साधक भी थे। उनके कौलार्चन में कन्हैया जी आचार्य बनते थे और यह अर्चन ५० साधकों की उपस्थिति में होता था। जिस साधक को इनके अर्चन में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा, उसे अनुभव हुआ होगा कि कौलार्चन वास्तव में क्या वस्तु है। इनके इस अर्चन में व्यवस्था का पूर्ण रूप से पालन होता था। ठीक समय पर पूजा-गृह में उपस्थित होकर निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभी साधकों को पूजन के अन्त तक निरत रहना पड़ता था।

राजा साहब के उक्त पूजनों की कन्हैया जी बड़े मुक्त कण्ठ से प्रशंसा किया करते थे और कहा करते थे कि 'ऐसे पूजन फिर कभी करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ।'

कन्हैया जी जितने गहरे साधक थे, उतने ही उदार भी थे। परिचित हो या अपरिचित, जो भी जिज्ञासु-भाव से उनकी सेवा में उपस्थित होता था, उसका मनोरथ पूर्ण करने में वे कभी कुछ अपनी ओर से उठा नहीं रखते थे। वे यह विचार तक नहीं करते थे कि 'यह मेरा शिष्य नहीं है, इसको मन्त्र-प्रक्रिया क्यों बतलाऊँ ?' वे देखते थे केवल जिज्ञासा की सत्यता और जब उन्हें उसका विश्वास हो जाता था, वे गुह्य-से-गुह्य रहस्य की बात भी बताने से कभी आना-कानी नहीं करते थे।

एक ज्योतिष-प्रेमी नव-युवक थे, ज्योतिष की परीक्षा पास थे। एक बार वे विन्ध्याचल गए। नवरात्र भर वहाँ रहकर सप्तशती का पाठ करते रहे। अन्तिम दिन उन्हें ऐसे लक्षण अनुभव में आए कि उन्हें दीक्षा ले लेनी चाहिए। तत्काल ही वे वहाँ के एक तान्त्रिक साधक से मिले। उन्होंने कहा कि 'आपकी दीक्षा में ४०० रु० लगेंगे।' ज्योतिषी जी चुप हो गए, उनके पास चार रुपये भी न थे ! मन मारकर लौट आए। संयोग-वश मेरी उनकी भेंट हो गई। उन्होंने अपना सारा हाल कहा। उनकी प्रवृत्ति की सच्चाई का अनुभव कर मैंने कन्हैया जी का परिचय दिया और कहा कि 'इनसे आपका काम बिना पैसे-कौड़ी के हो जायगा।' उन्होंने मुझसे कहा कि 'मैं तो इनसे खूब परिचित हूँ, परन्तु यह नहीं जानता था कि ये कौल भी हैं !'

ज्योतिषी जी काशी जाकर कन्हैया जी से मिले और अपना हाल बताया। कन्हैया जी ने पञ्चाङ्ग उठाकर देखा और कहा कि 'कल अच्छा मुहूर्त्त है। आप मेरे यहाँ आठ बजे रात्रि में आ जायँ। आपकी दीक्षा कर दी जायगी।' ज्योतिषी जी ने पूछा कि 'इस महत् कार्य के लिए मुझे क्या सम्भार जुटाना पड़ेगा ?' कन्हैया जी हँसकर बोले, 'पाव भर बताशे, कुछ फूल और माला तथा लाल रँग का एक अँगौछा।'

ज्योतिषी जी चुप होकर उनके मुख की ओर एकटक देखते रह गए। कन्हैया जी ने बड़े मधुर स्वर से कहा—'आप चिन्ता न करें। आपको जितना लाना चाहिए, उतना मैंने आपसे कह दिया। आप जाइए और ठीक समय पर आ जाइए।'

दूसरे दिन उनका दीक्षा-संस्कार पूर्ण विधि और समारोह के साथ हो गया। ज्योतिषी जी ने आकर मुझसे अपने उस संस्कार का ब्योरेवार हाल बताया। वे कन्हैया जी के कितने कृतज्ञ थे, यह उनकी सजल आँखें बार-बार उसका प्रमाण दे देती थीं। सचमुच वे ऐसे ही दयालु तथा उदार साधक थे।

न मालूम कितने जिज्ञासुओं को कन्हैया जी ने सन्मार्ग पर आरूढ़ किया था। मन्त्र की प्रक्रिया और सो भी ब्योरे के साथ वे आए दिन सभी को बताते रहते थे। किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखते थे। वे कहते थे कि 'उदर-पूर्ति तो हमारी वैदिक कर्म-काण्ड तथा ज्योतिष से हो जाती है। गुरु-दत्त यह शाम्भवी विद्या तो परोपकार के लिए ही है।'

प्रयोगादि के लिए उन्हें कितने ही लोग घेरे रहते थे, परन्तु वे प्रयोग की सारी विधि तो बता दिया करते थे, परन्तु किसी का प्रयोग करने का सङ्कल्प भूलकर भी नहीं लेते थे। वे ऐसे ही त्यागी साधक थे। उन्होंने तान्त्रिक साधना को धनार्जन का द्वार कभी नहीं बनाया, परन्तु प्रयोग-निरत सदैव रहे। इसका उन्हें अत्यधिक प्रेम था। दूसरों के प्रयोग यदि करते थे, तो निःस्वार्थ भाव से ही करते थे और सो भी उन्हीं कुछ लोगों के, जिन्होंने उनके प्रीति-भाजन बनने का सौभाग्य प्राप्त किया था।

कन्हैया जी अपने ढँग के एक विलक्षण कौल साधक थे, परन्तु इतना होते हुए भी उन्हीं के कुछ साथी उन्हें उनके अनुरूप मान्यता नहीं देते थे। यहाँ तक कि काशी के ही एक सज्जन को इस बात का विश्वास ही नहीं था कि वे पूर्णाभिषिक्त हैं। ये सज्जन बड़े प्रवीण साधक हैं और इन्हें अपनी परम्परा का बड़ा गर्व रहता है। इन्होंने कई बार प्रकट रूप से कहा कि 'कौन जाने, कन्हैया जी को दीक्षा मिली भी है या नहीं।' इनके इन आक्षेपों का ज्ञान कन्हैया जी को था, परन्तु उन्होंने कभी इनका प्रतिवाद नहीं किया।

मृत्यु के कुछ समय पूर्व एक अर्चन में कन्हैया जी और उक्त सज्जन भी आमन्त्रित हुए । यहाँ इन सज्जन ने कोई ऐसा प्रसङ्ग छेड़ा, जिसमें कन्हैया जी का इनसे वाद-विवाद-सा होने लगा । अर्चन के आचार्य ने इन दोनों महानुभावों को वहीं-का-वहीं शान्त कर दिया । मुझे इस घटना की सूचना मिली । मैंने कन्हैया जी से उसका उल्लेख किया । उन्होंने बड़े मधुर ढँग से कहा—'मेरा उनसे विवाद कैसे होगा ? वे तो एक विज्ञ साधक हैं । मैं उनका हृदय से आदर करता हूँ ।' वे ऐसे ही मत्सरता-शून्य कौल थे ।

एक बार एक अर्चन में मैं भी उपस्थित था । कन्हैया जी आचार्य थे । वन्दन हो रहा था । मैंने कहा कि 'एक अर्चन में मैंने एक आचार्य को अपने पात्र से अपने शिष्य को प्रसाद देते देखा है ।' उन्होंने कहा कि 'यह कौन-सी अनहोनी बात आपने कही !' यह कहकर उन्होंने अपने शिष्य के पात्र का प्रसाद लेकर स्वयं ग्रहण कर लिया । इसके बाद उन्होंने कहा कि 'कौल-मार्ग में भेद-भाव की गुंजायश नहीं है । मां के समक्ष अर्चन में न कोई शिष्य है, न कोई गुरु, सब शिव हैं । तब किस बात का भेद-भाव ?' यह कहकर वे आनन्द की झोंक में आकर मां की गम्भीर स्वर में स्तुति करने लगे । उस समय का उनका वह भव्य रूप मैं कभी नहीं भूल सकता । वे मुझे साक्षात् आनन्द-भैरव ही दिखाई दिए ।

कन्हैया जी के साथ अर्चन में जो उल्लास होता था, बहुत ही सरस और गम्भीर होता था । उनका अर्चन अर्चन होता था । उसमें सात्विक भावों का उद्रेक होता था और सबसे अधिक यह कि अपनी-अपनी स्थिति का बोध । वे ऐसे ही कौलाचार्य थे । उनके तिरोभाव से काशी के शाक्त-समाज में एक आदर्श कौल का अभाव हो गया है ।

काशी के नागर ब्राह्मण वेद-विद्या के पण्डित तो हैं ही, उनकी जीवन-वृत्ति भी तदनुरूप ही रहती है । वे स्वभावतः बड़े आचार-वान् होते हैं । कन्हैया जी उन्हीं में से एक थे, परन्तु उनमें अपने आचार-विचार का एवं नागर ब्राह्मण होने का रत्ती भर अभिमान नहीं था । इस बात का पता उनको भले प्रकार है, जो उनके घनिष्ठ सम्पर्क में रहे । कौलार्चन में किसी प्रकार का जाति-प्रतिबन्ध नहीं है, परन्तु वे साधारण जीवन में भी कुलाचार्यों के सत्सङ्ग में आने पर जाति-प्रतिबन्धों की प्रायः अवहेलना कर बैठते थे । उनकी बाह्य वृत्तियाँ सद्-गृहस्थ ब्राह्मण-जैसी ही रहती थीं, परन्तु कौलिकों के सम्पर्क में वे अपनी उन जन्म-गत वृत्तियों का पालन करते हुए भी कौलाचार के पालन करने में किसी से हीन तो ठहरते नहीं थे, वरन् कभी-कभी आचार के नियमों का उल्लंघन करके अपने स्वच्छन्द मनोभावों का जो परिचय दिया करते थे, उससे किसी को रत्ती भर भी ग्लानि नहीं होती थी । इसके विपरीत उनके प्रति श्रद्धा के भाव का उद्रेक ही होने लगता था ।

बात यह थी कि कन्हैया जी के व्यवहार में सत्यता का जो पुट होता था, वह उनका महत्त्व अपने आप ही स्थापित कर देता था । वे वास्तव में एक सच्चे कौल थे । कुल, शील आदि पाशों के भङ्ग करने का उन्होंने अच्छा अभ्यास किया था और हम कह सकते हैं कि वे उनसे पूर्णतया मुक्त थे ।

कन्हैया जी जो थे, वह उनके जीवन से मेल नहीं खाता था, परन्तु उन्होंने बड़े सुन्दर ढँग से उन दोनों में मेल बैठा लिया था, यह उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी । वे सबेरे उठते थे, मणिकर्णिका घाट में स्नान, सन्ध्या-वन्दनादि कर एक घड़ा जल लेकर साधारण शैवों की तरह विश्वनाथ जी के मन्दिर में जाकर विश्वनाथ जी पर चढ़ाते थे । उसके बाद घर आकर साधारण गृहस्थ की भाँति अपने घर के काम-काज में लग जाते थे । रात होने पर विश्वनाथ जी की नौ बजे की आरती में पुजारियों की पंक्ति में बैठकर वे आरती किया करते थे । आरती की समाप्ति के बाद अन्नपूर्णा जी के मन्दिर में आकर मां के दर्शन कर बाहर बैठकर थोड़ी देर तक जप किया करते थे । उनका यह जीवन उनके अन्तर के जीवन से कैसे मेल खा गया, इसका रहस्य केवल कौल ही जान सकता है ।

कन्हैया जी सदैव रहस्य-मय रहे । उनके सम्पर्क में आनेवाले अधिकांश लोगों को उनके कौलिक स्वरूप का कभी पता नहीं लगा, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि वे कभी गुप्त नहीं रहे । उनके जो विचार थे, उनको उन्होंने सदैव प्रकाश में रखा । यह अवश्य था कि कौलिक तत्वों को चर्चा वे अधिकारी जिज्ञासुओं के साथ ही किया करते थे । फलतः बहुत से

लोग उनके इस रूप को जान भी गए थे, परन्तु उनकी साधारण ब्राह्मण-जैसी रहन-सहन-प्रणाली ने कभी किसी को यह अवसर ही न दिया कि कोई उनके सम्बन्ध में इस प्रकार का विचार कर सके कि वे एक बड़े भारी कौल भी हैं। यह गोपनीयता की भावना वास्तव में उनकी एक विलक्षण विशेषता थी।

प्रकट रूप से कन्हैया जी वैदिक कर्म-काण्डी, फलित ज्योतिषी तथा तन्त्रज्ञ पण्डित थे, परन्तु उनके साधक-रूप का ज्ञान सब किसी को नहीं था। उन्होंने अपनी ही तान्त्रिक साधनाएँ नहीं की थीं, मुसलमानी मन्त्रों तक की साधनाएँ उन्होंने की थीं। शाबरी मन्त्रों का भी उन्होंने अभ्यास किया था। यही नहीं, जैनी और बौद्ध साधनाओं का भी। इस प्रकार उन्होंने मन्त्र-विद्या का पूर्ण अनुभव प्राप्त किया था और उसकी उपयोगिता के वे बड़े प्रशंसक थे।

कन्हैया जी का मत था कि 'जैन साधकों को शीघ्र सिद्धि मिलने की विशेष सुविधाएँ प्राप्त हैं। पञ्च-तत्त्वों का वे जीवन के व्यवहार में स्वप्न में भी उपयोग नहीं करते, अतएव साधना-काल में उनका उपयोग जब वे करते हैं, तब उनके मन की वृत्ति स्वभावतः पूर्ण रूप से निर्मल ही रहती है। फलतः उन्हें अनायास ही प्रयोग में सिद्धि मिल सकती है।' इस प्रकार जैन तान्त्रिक साधकों के वे बड़े प्रशंसक थे।

कन्हैया जी काशी के सभी धर्मों के साधकों के सम्पर्क में आए थे। उनमें भेद-भाव छू तक नहीं गया था। जहाँ साधना देखते थे, वे स्वभावतः उस ओर खिंच जाते थे। साधक चाहे हिन्दू हो, चाहे कोई भी हो, वे उससे अवश्य मिलते थे और उससे विचार-विनिमय करके अपने विचारों को परिष्कृत किया करते थे। अपनी इस मनोवृत्ति के कारण वे अपने नगर के बहुतेरे साधकों को जान गए थे और अवसर मिलने पर वे अपने वार्तालाप में उन सबकी प्रशंसा किया करते थे। अपने वार्तालाप में प्रसङ्ग-वश जब वे अपने परिचित साधकों की साधनाओं का, उनकी तपश्चर्या का वर्णन करने लगते थे, तब जान पड़ता था कि वे कौल-तत्त्व के कितने भारी रहस्यज्ञ हैं।

कम-से-कम मैंने उनके मुख से कभी किसी कौल साधक की निन्दा नहीं सुनी। ऐसा प्रसङ्ग उठने पर वे हँसते हुए कह पड़ते थे—'क्वचिद् भ्रष्टः क्वचिद् भूत-पिशाच-वत् ! अरे भाई, ये सब शिव-रूप हैं। इनकी लीलाओं को कौन जान सकता है ?'

कन्हैया जी में ऐसा ही सात्विक भाव ओत-प्रोत था। उनका मूल्य उनके जीवन-काल में कोई नहीं आँक सका। उनके न रहने पर कुछ लोग उनकी विरुदावली गाकर चुप हो जायँगे। संसार का ऐसा ही नियम है, परन्तु यह कहना ही पड़ेगा कि संसार की दृष्टि से भी वे काशी के एक रत्न थे, जिसके अभाव की पूर्ति होना निकट भविष्य में सम्भव नहीं है।

उक्त विवरणात्मक परिचय से स्पष्ट है कि 'कुल-ज्योति' स्व० पं० कन्हैयालाल दीक्षित जी कितने परोपकारी कौल साधक थे। उन्होंने शुक्ल जी द्वारा प्रवर्तित 'चण्डी' पत्रिका में साधकोपयोगी कितने ही लेख लिखने की कृपा की, जिनका स्थायी महत्त्व है। इस विशेषाङ्क में उनके कुछ चुने हुये लेखों को आगे उद्धृत किया गया है। उन्हें ध्यान से जो भी पढ़ेगा, वह अनुभव करेगा कि साधना के विषय में कितना खुलकर वे लोगों का मार्ग-दर्शन करते थे। उनकी पुण्य स्मृति को शतशः नमन।

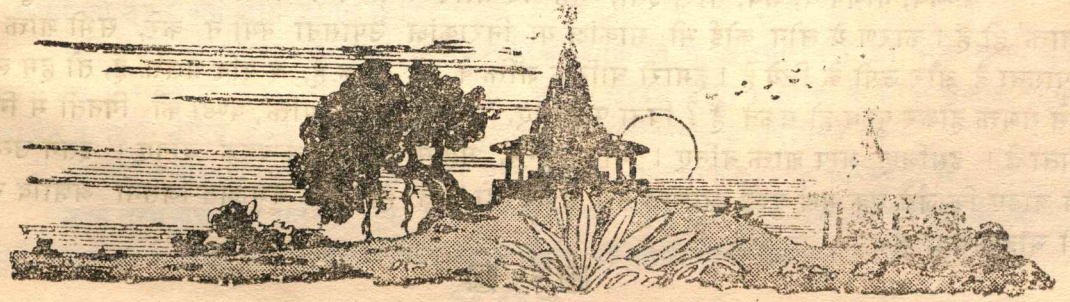

'कुल-ज्योति' पं० कन्हैयालाल दीक्षित के उद्‌बोधक निबन्ध

[१]

शक्ति की उपासना

('चण्डी' वर्ष १, सम्वत् १९९९ वि० : सन् १९४२ ई०, संख्या ८)

शक्ति के उपासकों को लोग 'शाक्त' कहते हैं। जो लोग शक्ति के उपासक नहीं हैं, वे पौरुषेय न होकर अशक्त हो गये हैं और होते जा रहे हैं। सामर्थ्य, बल, ताकत आदि भाषान्तर से शक्ति के ही नाम मात्र हैं। कर्मेन्द्रियों की शक्ति भिन्न-भिन्न आदान, गमन प्रभृति से सभी के जानने में है।

ज्ञानेन्द्रियों की ताकत मन के प्रत्येक पदार्थ को रूप, रस, गन्धादि द्वारा सुख अथवा क्लेश पहुँचाया करती है। वह हर एक प्राणी में एक सी ही हो, ऐसा नहीं है। प्रत्येक प्राणी की यही इच्छा होती रहती है कि जितनी ताकत उसके पास है, उससे अधिक मेरी हो जाय। इसी चिन्ता का नाम 'उपासना' है।

उपासना भी मुख्यतः दो प्रकार की होती है—१ आसुरी और २ दैवी। एक दुःख पहुँचाया करती है और दूसरी सुख पहुँचाती है, परन्तु कुछ घट-बढ़ इन दोनों प्रकारों में हुआ करती है। सत्त्व, रज, तम से मिश्रित होकर इनके भिन्न-भिन्न प्रकार होते हैं। लोभ, ईर्ष्या, मात्सर्य आदि दुर्गुण दैवी उपासना को आसुरी उपासना का रूप दे देते हैं।

'शक्ति' एक शस्त्र-विशेष है, जो बर्छी के रूप में काम में लाया जाता है। हाथ में उसे धारण कर चलाने की शक्ति होनी चाहिये। साथ ही यदि हाथ में ताकत है, तो बुद्धि को तीक्ष्णता-रूपी शक्ति भी चाहिये, जिससे सम्मुख शत्रु फिर से सिर न उठा सके अथवा 'शक्ति' न उठाने पर भी बुद्धि की शक्ति द्वारा शत्रु ढीला हो जाय। इस प्रकार शक्ति-उपासना में 'बल' और 'बुद्धि' दोनों की आवश्यकता पड़ती है। बुद्धि को बढ़ाने में 'तप' सहायक होता है। तप 'योग' के अधीन है। योग, 'हठ-मार्ग' से प्रायः सभी नहीं कर सकते। अतएव 'तन्त्र-मार्ग' मणि, मन्त्र, महौषधि तीनों से सम्बन्ध कर, हम लोगों के लिये शीघ्रता से बल-बुद्धि दोनों का वर्धक है।

जहाँ पर जैसा उपयोग हो, वहाँ पर मणि, महौषधि, मन्त्र तीनों को भिन्न-भिन्न रूप से प्रयोग में लाना चाहिये, जिससे कार्य में शीघ्र शक्ति की वृद्धि हो। इसके लिये गुरु की आवश्यकता है, जो कार्य को सिद्ध करा सके। इसीलिये तन्त्रों में गुरु के गुण गाये गये हैं।

वैष्णव, गाणपत्य, शैव, सौर, ईसा, मुहम्मद आदि तथा अन्य आचार्य लोग भी मेरी बुद्धि में 'शाक्त' ही हैं। कारण ये लोग कोई भी साकांक्ष या निराकांक्ष उपासना क्यों न करें, सभी शक्ति की उपासना है और उसी के लिये है। हमारी धार्मिक शक्ति के जो रक्षक हैं, वे यदि अशक्त हैं, तो हम लोग कैसे सशक्त होकर पुरुष हो सकते हैं? बिना पुरुष हुए, पुरुषार्थ-हीन व्यक्ति षण्डों की गिनती में गिना जाता है। इसलिए आप शाक्त बनिए। मणि, मन्त्र, महौषधियों के अन्वेषक बनिए। इतने उन्मत्त हो जाइए कि जैसे एक मूर्ख पुरुष आकण्ठ मद्य पीकर हो जाता है; एक बुभुक्षित जितनी अन्नादि रसों की चाह रखता है।

[२]

शक्ति-साधना का एक सरल सिद्ध प्रयोग

('चण्डी' वर्ष १, सम्वत् १९९९ वि० : सन् १९४२ ई०, संख्या ९)

शक्ति-साधना कैसे करनी चाहिए ? उसके लिए देश-कालोचित शक्ति-वर्द्धक, चरित्र-शोधक उपाय होने चाहिए। कलि-युग में स्वारोचिष मन्वन्तर में राजा सुरथ को भगवती ने वर-दान देकर सिद्धि दी। हम लोगों को भी उसी तरह का सन्तोष हो, तीन वर्ष की जटिल उपासना भी न हो, पैसे और समय—दोनों का बचाव भी हो और देवी प्रसन्न हो जायँ। यदि कोई व्यक्ति ऐसा प्रश्न करता हो, तो तन्त्र उसे भी सन्तोष-प्रद उत्तर देगा—

'उत्तमा योषिता-पूजा, वह्नि-पूजा च मध्यमा।'

अर्थात् स्त्री की पूजा करना उत्तम है, होम द्वारा पूजा करना मध्यम है (सांख्यायन तन्त्र)।

योषिताओं अर्थात् स्त्रियों के पूजन का मनु जी भी समर्थन करते हैं। यथा—

'यत्र नार्यः पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।'

अर्थात् जिस स्थान में नारियों की पूजा की जाती है, वहाँ देवता विहार करते हैं।

यह सच है कि पूजन करने के योग्य पदार्थों को प्राप्त कर भारत उन सबका संरक्षण तो करता ही है, परन्तु जहाँ तक मैं देखता हूँ, 'पूजन' नहीं किया जाता। शक्ति की पूजा हो और शक्ति

(पृष्ठ २२ का शेषांश)

विमल चरित्र से, उत्तम बुद्धि से—सच्चे प्रेम से सद्गुरु के उपदेश द्वारा जब तक आप दत्त-चित्त नहीं होते, तब तक उपदेश झाड़ने से न देश, न धर्म, न जाति, न व्यवहार—किसी में भी सशक्त नहीं हो सकते। हाँ, शक्ति-हीन की तरह ठुकराये भले ही जा सकते हैं।

बिजली के तार को, उसमें बिजली न होने पर, सभी खुशी-खुशी छू सकते हैं। पर, उसमें बिजली होने से, वही तार प्राण-घातक हो जाता है क्योंकि उसमें शक्ति भरी हुई है। वैसे ही ध्यान-धारणा से मनुष्यों के भीतर भी आत्म-शक्ति एकत्र होकर उसे शक्तिमान् बनाती है। वह शक्ति गुरु-द्वारा थोड़े ही समय में चैतन्य हो जाती है और उससे ओज-वृद्धि अपने आप हो उठती है।

साधक की वासना यदि क्षुद्रता से भरी हो, तो वह साधारण कार्य करके लुप्त हो जाती है, परन्तु महान् कार्य-सिद्धि वालों की वह महती शक्ति धीरे-धीरे अपना ओज बढ़ाती है। इसके ध्यान के लिए ही 'चतुरस्र-कुण्ड' में सर्प-वेष्टित शिव-लिङ्ग स्थापित करने का विधान है। आधुनिक समय में इस विधान को बहुत कम लोग जानते हैं।

शक्ति को जिसे चाह हो, वह पूर्णोत्सुक होकर एकान्त में संलग्न-चित्त हो थोड़े समय तक निश्चित रूप से गुरु-मार्ग से चैतन्य-लाभ करे। फल अवश्य उत्पन्न होगा। शक्ति के बिना अशक्त रहना धनोपार्जन के बिना दरिद्र बनने से कहीं बढ़कर दुखद है, क्योंकि शक्ति के उपासकों को—

यदक्षरैक-संसिद्धे स्पर्द्धते भुवनेष्विह। रवि-तार्क्ष्येन्द्र-कन्दर्प-शङ्करानल-विष्णुभिः॥

उक्त तन्त्र-वचन के अनुसार एक 'अक्षर' (बीज) को सिद्ध कर ऐसा शक्ति-शाली बनना चाहिए कि सूर्य, गरुड़, इन्द्र, काम, शङ्कर, अग्नि और विष्णु आदि भी उससे ईर्ष्या करें

का आविर्भाव न हो, ऐसा यदि होने लगे, तो वेदादि-ग्रन्थों में हमारा विश्वास कैसे अटल रह सकेगा ?

अन्य विदेशी लोग ऋग्-वेद के दो-चार मन्त्रों से प्रेरणा लेकर बिजली का उत्पादन कर लें और उससे अनेक कार्यों का सञ्चालन करना सीख लें किन्तु भारत के सपूत कोई भी नया काम न कर सकें, इसका कारण यही है कि शक्ति की उपासना न कर आप उसकी उपेक्षा ही करते हैं।

विज्ञान आपके मस्तिष्क की 'शक्ति' के भरोसे जीवित है। रेडियो (आकाश-वाणी) का गाना आपके अन्दर से बुद्धि के संघर्ष से उत्पादित हुआ है, न कि बाँस, विद्युत् आदि भिन्न-भिन्न पदार्थों से ? ये पदार्थ सत्यादि तीनों युगों में भी विद्यमान थे किन्तु तब पेटी के भीतर से ऐसे मधुर गायन सुनने में नहीं आते थे। तो यह शोध मस्तिष्क में आया कहाँ से ?

माता के पेट में जब यह बच्चा था, उस समय माता के हृदय की उच्च तरङ्गों ने इसे जन्म दिया। वेदों के भीतर ऐसे बहुत से सिद्धान्त विशेष रूप में प्रतिपादित किए गए हैं। गरुड़ का जन्म बालखिल्य ऋषियों के अपमान के फल-स्वरूप हुआ, इसका पूरा इतिहास महा-भारत में दिया है। अभिमन्यु द्वारा चक्र-व्यूह के भेदन का उदाहरण सभी जानते हैं।

अतः प्रश्न यह है कि आजकल प्रजा में इतनी दुर्बलता क्यों आई कि पुत्र-वर्ग माताओं की पूजा भुला बैठे और माताओं ने भी अभ्युदय-रहित पुत्रों से भारत को भर दिया ?

आज सर्वत्र ही यह गाया जाता है कि भारत बहुत दुर्बल है क्योंकि शक्ति नहीं है। जब शक्ति ही न होगी, तब राजा, स्त्री, भृत्य किसी से भी सम्मान न मिल सकेगा। यदि आपको शक्ति-वान् बनना है, तो शक्ति-साधन सीखिए। यह साधन करोगे, तो छः मास में या इससे भी थोड़े समय में प्रत्यक्ष सिद्धि प्राप्त होगी।

इस प्रयोग के लिए चरित्र-शुद्धि और ईश्वर-भक्ति दोनों आवश्यक हैं। यदि इसका आजीवन साधन करे, तो साधक के बच्चों को मातृ-शक्ति क्या है, इसका बोध होगा। माता एक की होने पर कृपा-वश वही जगज्जननी हो जायगी। जैसे जड़ पदार्थों में संश्लेषण करने से आज-कल बहुत से आश्चर्य-मय कृत्य दिखाई देते हैं, वैसे ही चैतन्य से चैतन्य को टक्कर होने से उससे भी अधिक आश्चर्य-मय कृत्य दिखाई देंगे।

स्त्री हो या पुरुष—शक्ति दोनों में है और अभिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों को वह किया करती है। इस साधन में लोहा, गन्धक, चकमक और रत्न उत्तेजना तथा शक्ति बढ़ाने के लिए काम में लाए जाते हैं। इस प्रयोग में किसी प्रकार का दूषण नहीं है। गोपाल, गणेश, वटुक के साधक उनके मन्त्रों से बालकों पर भी आवाहन कर शान्ति-लाभ कर सकते हैं। इस साधन से उन्हें शक्ति के साधन के बहुत से मार्ग मिलेंगे।

शक्ति-वान् होने से साधक का यश भारत-भूमि में फैलेगा और शक्ति की साधना की प्रबलता होगी। निगेटिव और पाजिटिव शक्ति प्रकाशित होकर संसार को आभा-मय करेगी। विद्या, बल, धन, साहस—सभी में शक्ति फैलेगी। यदि शक्ति की कृपा होगी, तो नर से नारायण होना असम्भव न होगा।

विना शक्ति के नारायण के नाम का उच्चारण भी होना कठिन है। शक्ति के ही बल पर रावण ने युद्ध में नारायण का आवाहन कर मोक्ष प्राप्त किया था। अशक्तों के लिए कहीं राम का आविर्भाव हुआ है ?

(आवरण पृष्ठ २ का शेष)

अपराह्न ४ बजे 'श्रीपराड़कर-स्मृति-भवन' के भव्य सुसज्जित कक्ष में 'जन्म-शताब्दी-द्वि-दिवसीय समारोह' के अन्तर्गत शाक्तधर्मावलम्बियों का सत्सङ्ग-आयोजन सानन्द सम्पन्न हो गया।

अनेक विशेष बातों में एक सुखद संयोग यह रहा कि इसी दिन गुप्तावतार-बाबाश्री का १०४वाँ पुण्य जन्म-दिवस काशी की उनकी भक्त-मण्डली द्वारा मनाया जा रहा था और अगस्त-सितम्बर की 'सम्पादक की वाणी' स्मारिका का मुखपृष्ठ बाबाश्री के भव्य रंगीन चित्र से केवल अलंकृत ही नहीं था, भारत को स्वाधीनता हेतु सन् १९३२ में बाबाश्री द्वारा किए गए 'मन्त्रात्मक सप्तशती' के अनुष्ठान का विवरण भी उसमें प्रकाशित था। 'सम्पादक की वाणी' का यह अंक उक्त समारोह में उपस्थित सभी महानुभावों में वितरित किया गया।

शाक्त-सत्सङ्ग के इस अनूठे आयोजन की अध्यक्षता की वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के तन्त्र-विभाग के भू० पू० अध्यक्ष पं० श्रीवटुकनाथ शास्त्री खिस्तेजी ने और मुख्य अतिथियों के रूप में अ० भा० शाक्त सम्मेलन के अध्यक्ष वयोवृद्ध पं० श्रीशिवनाथ जी काटजू (सम्प्रति अध्यक्ष विश्व-हिन्दू-सम्मेलन) एवं गुरुवर श्री पं० शिवाशङ्कर जी त्रिपाठी मञ्च की शोभा बढ़ा रहे थे। विशिष्ट वक्ताओं में इन तीनों महानुभावों के अतिरिक्त डा० कैलासपति त्रिपाठी (संस्कृत साहित्य, संस्कृति एवं ललित कला संकाय, संस्कृत वि० वि० के अध्यक्ष), स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानी पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र और 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, सम्पादक 'चण्डी' एवं 'सम्पादक की वाणी' स्मारिका के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी ने शाक्त-धर्म, शाक्त-साधना एवं शाक्त-संगठन-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला, जिनका अनुमान 'चण्डी' के विज्ञ पाठक सहज ही कर सकते हैं।

विशेष उल्लेखनीय बात यहाँ यह है कि सर्वथा अकल्पित रूप से उक्त आयोजन के प्रारम्भ होने के ठीक पहले आजमगढ़ के श्री अशोककुमार श्रीवास्तव जी सपत्नीक पधारे और उन्होंने 'श्रीकाली-मठ' की ओर से सभी वक्ताओं को पुष्प-माला एवं पीतवस्त्र (धोती-दुपट्टे) से अभिनन्दित किया। विशेष विवरण हेतु 'सम्पादक की वाणी' स्मारिका का अक्टूबर अङ्क द्रष्टव्य है। उसमें समारोह-सम्बन्धी चित्र भी दिए गए हैं।

उक्त दो दिवसीय आयोजन अचानक ही हुआ। समय कम होने के कारण 'चण्डी' के विशेषांक 'शक्ति-पीठ काशी' का प्रकाशन पूर्ण रूप में उस समय नहीं हो पाया। प्रस्तुत विशेषाङ्क भी अभी पूरा नहीं है। अक्टूबर ८८ के अङ्क में भी इस विशेषाङ्क का शेष साहित्य प्रकाशित किया जायगा क्योंकि काशी के शक्ति-पीठत्व को प्रतिपादित करनेवाले विविध तथ्यों पर प्रकाश डालनेवाली सामग्री अनेक विज्ञ महानुभावों ने उपलब्ध कराने का आश्वासन दिया है और उसे एकत्र करने में समय लगना अपेक्षित है।

सम्मान्य बन्धुवर श्री पं० रङ्गनाथ जी 'राकेश' ने अस्वस्थ होते हुए भी 'श्रीकाली-मठ', काशी के तीन चित्र उपलब्ध कराने की कृपा की, जिससे इस विशेषाङ्क की शोभा बढ़ गई है। इस अमूल्य सहयोग के लिए उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह कम है। 'शक्ति-पीठ काशी' के सम्बन्ध में उनका महत्त्वपूर्ण लेख अगले अङ्क में पाठकों को पढ़ने को मिलेगा।

काशी-वासी या अन्यत्र रहनेवाले विज्ञ महानुभावों से अनुरोध है कि इस विशेषाङ्क के अनुरूप काशी के दिवङ्गत या वर्तमान शाक्त साधकों, काशी में विद्यमान गुप्त या प्रकट शाक्त-साधना-स्थलों, मन्दिरों, पीठों, प्रतिमाओं आदि का विवरण यदि भेज या भिजवा सकें, तो कृपया इस महत्कार्य में सहयोग देकर पुण्य और यश के भागी बनें। उक्त विषयक श्वेत-श्याम फोटो या हाथ से बने स्केच अथवा रेखा-चित्र (काली स्याही में) भी भेजे जा सकते हैं। उनके ब्लाक बनवाकर इस विशेषाङ्क में उन्हें सधन्यवाद प्रकाशित किया जायगा।

इस सत्सङ्ग समारोह में सम्मान्य श्रीगौरीशङ्कर चौधरी, पं० श्रीकान्त पाण्डेय, पं० श्रीकान्त तिवारी, पं० भैरव-राम नागर, पं० प्रद्युम्नराम नागर, पं० त्रिभुवनराय नागर, श्री गिरिजेश नागर, श्रीकृष्णदत्त भट्ट, श्री दुर्गेशविहारी माथुर, स्वामी आत्मानन्द, श्री श्यामनारायण सिंह, श्री रवीन्द्रलाल श्रीवास्तव, पं० धीरेन्द्र त्रिपाठी, श्रीमती विमल श्रीवास्तव, श्री आशुतोष नन्दन, श्री अनूप मेहरोत्रा, श्री आलोक शुक्ल, श्रीमती उमादेवी एवं कुमारी श्यामसुन्दरी शुक्ला आदि की उपस्थिति उल्लेखनीय है।

श्री चामुण्डेश्वरी देव्यालय के प्रतिष्ठापक और भगवती चामुण्डेश्वरी देवी (देखिये, 'चण्डी' अङ्क २)

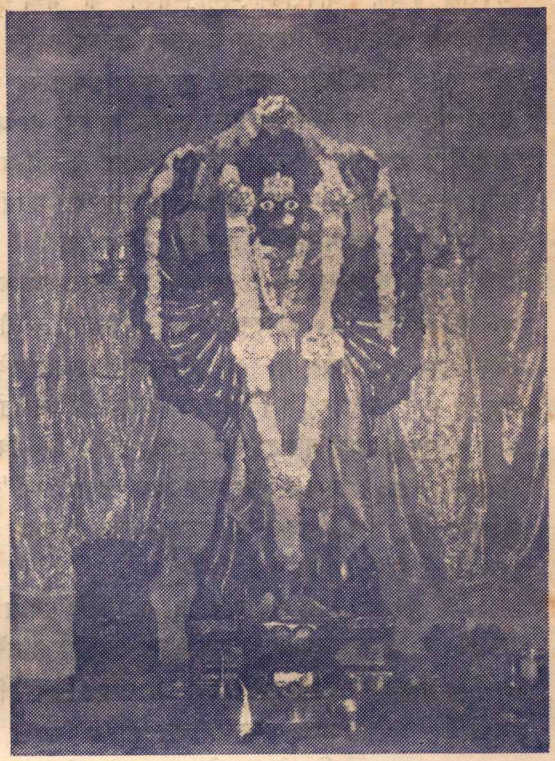

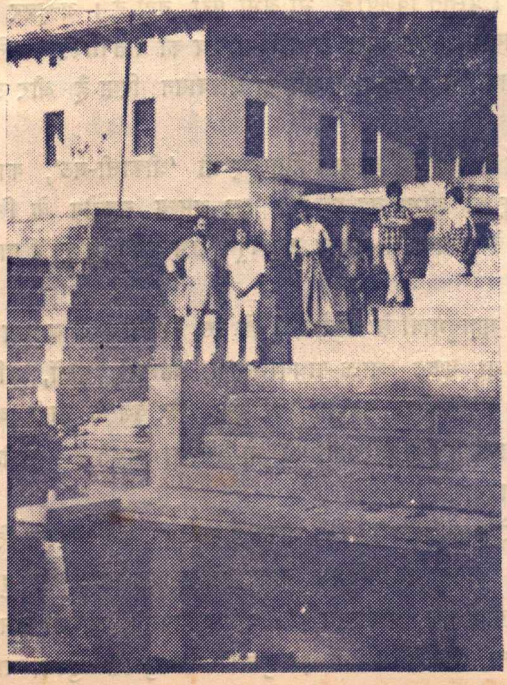

'शक्ति-पीठ' काशी का तीर्थ-स्थल
'लक्ष्मी-कुण्ड'

* * *

पण्डित जगन्नाथ मिश्र कृत
'गङ्गा-लहरी'
के
हिन्दी भावानुवाद कर्त्ता
पण्डित रङ्गनाथ राकेश
के
सौजन्य से प्राप्त चित्र

सम्पादक, प्रकाशक व मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६